Satya ka Avahan

सत्य का आवाहन

Invoking the Divine

Year 11 Issue 6 November–December 2022
Membership Postage: Rs. 100

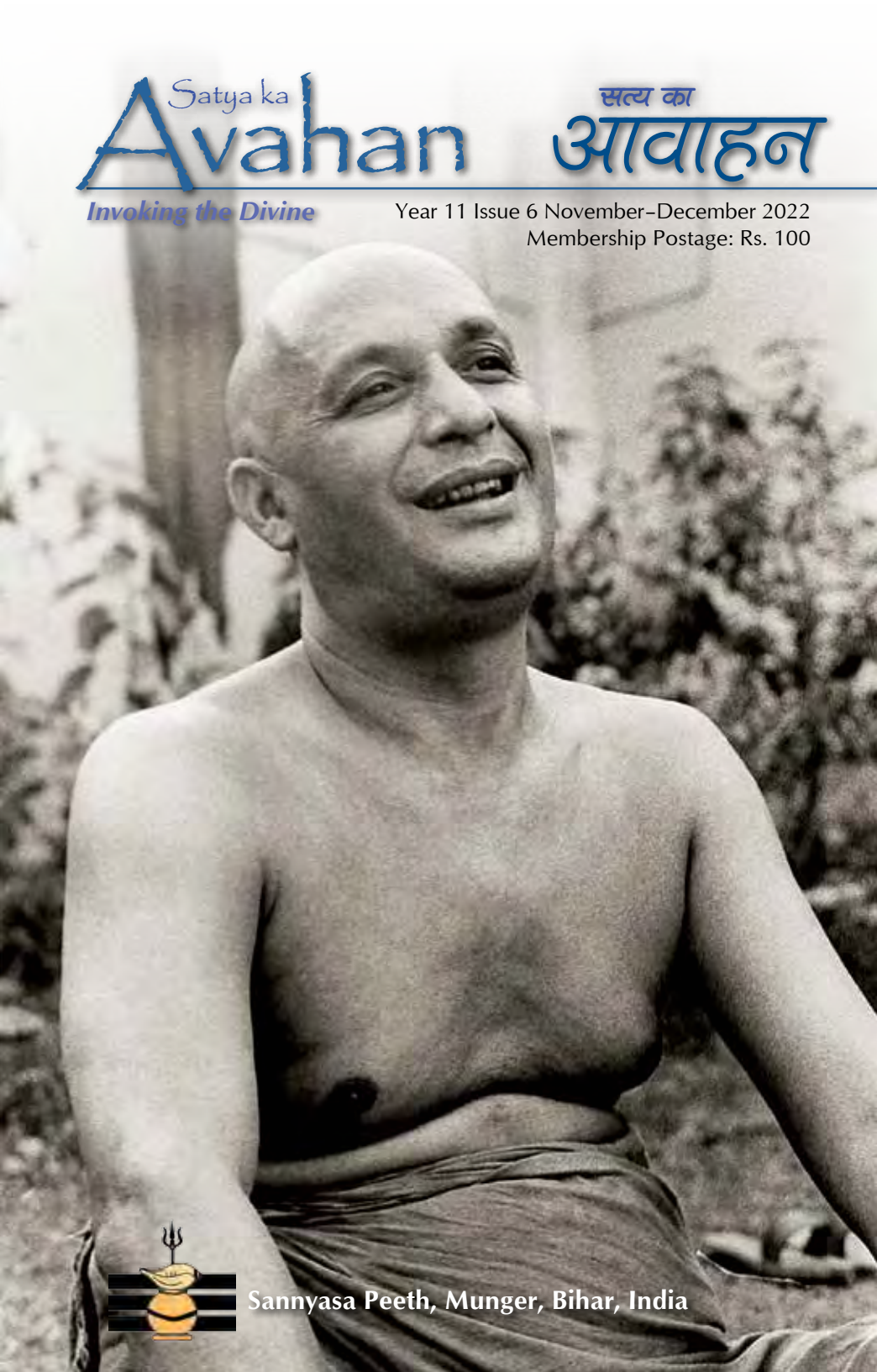

Sannyasa Peeth, Munger, Bihar, India

Hari Om

Satya Loka Avahan is a bilingual and bi-monthly magazine compiled, composed and published by the sannyasin disciples of Sri Swami Satyananda Saraswati for the benefit of all people who seek health, happiness and enlightenment. It contains the teachings of Sri Swami Sivananda, Sri Swami Satyananda, Swami Niranjanananda and Swami Satyasangananda, along with the programs of Sannyasa Peeth.

Editor: Swami Gyansiddhi Saraswati

Assistant Editor: Swami Shivadhyanam Saraswati

Published by Sannyasa Peeth, c/o Ganga Darshan, Fort, Munger – 811201, Bihar.

Printed at Thomson Press India (Ltd), Haryana

© Sannyasa Peeth 2022

Useful Resources

Websites:

www.sannyasapeeth.net
www.biharyoga.net
www.satyamyogaprasad.net

Apps:
(for Android and iOS devices)

Bihar Yoga
APMB
YOGA (English magazine)
YOGAVIDYA (Hindi magazine)
FFH (For Frontline Heroes)

Front cover and plates:
Sri Swami Satyananda Saraswati

SATYAM SPEAKS – सत्यम् वाणी

People do not have to be told how to develop their feelings. They only have to be taught how to direct their feelings. Only the channelling of feeling is required. Bhakti is absolutely natural for everyone. All one has to do is just change the direction of the flow. The same feeling which was running towards jealousy, anger, greed and passion has to be redirected, and then it becomes bhakti.

—Swami Satyananda Saraswati

लोगों को यह समझाने की जरूरत नहीं कि वे अपनी भावनाएँ कैसे विकसित करें, बल्कि उन्हें यह सिखाना है कि वे उन्हें कैसे दिशान्तरित करें। भक्ति सबके लिए एकदम स्वाभाविक है, केवल भावना के प्रवाह की दिशा बदलनी है। वही भावना जो काम, क्रोध, लोभ और ईर्ष्या की ओर बह रही थी, उसे दिशान्तरित कर देना है और तब वह भक्ति बन जाती है।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

Published and printed by Swami Kaivalyananda Saraswati on behalf of Sannyasa Peeth, Paduka Darshan, PO Ganga Darshan, Fort, Munger – 811201, Bihar.
Printed at Thomson Press India (Ltd), 18/35 Milestone, Delhi Mathura Rd., Faridabad, Haryana.
Owned by Sannyasa Peeth **Editor**: Swami Gyansiddhi Saraswati

Satya ka Avahan
Invoking the Divine

सत्य का आवाहन

Year 11 Issue 6 • November–December 2022

न तु अहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनां आर्त्तिनाशनम्॥

"I do not desire a kingdom or heaven or even liberation. My only desire is to alleviate the misery and affliction of others."

—Rantideva

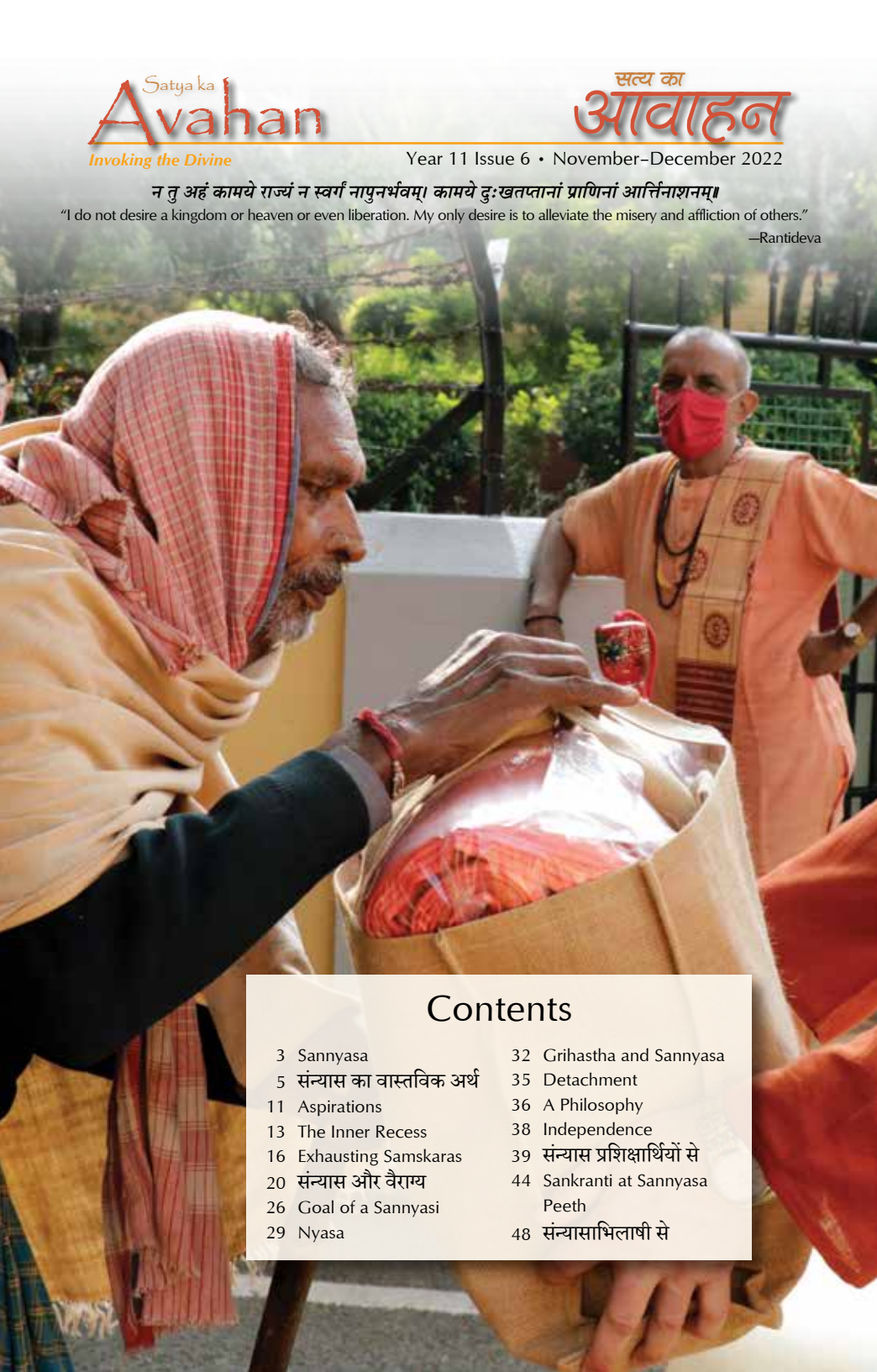

Contents

3 Sannyasa
5 संन्यास का वास्तविक अर्थ
11 Aspirations
13 The Inner Recess
16 Exhausting Samskaras
20 संन्यास और वैराग्य
26 Goal of a Sannyasi
29 Nyasa
32 Grihastha and Sannyasa
35 Detachment
36 A Philosophy
38 Independence
39 संन्यास प्रशिक्षार्थियों से
44 Sankranti at Sannyasa Peeth
48 संन्यासाभिलाषी से

When sannyasa blooms
And knowledge dawns
And power unfolds,
It sanctifies history and posterity.

One single sannyasin
Can be the creator of an epoch,
A seer of intuition
And a mastermind of traditions.
Keeping this ablaze in your mind
Step into sannyasa.

—*Swami Satyananda Saraswati*

Sannyasa

Swami Satyananda Saraswati

What does the path of sannyasa have to offer the people of today?

Today many people are wondering how they can raise their level of consciousness so that this cosmic union becomes a reality in their own lives. To do this we have to ask ourselves, 'What is our real purpose in life? What is our basic need? Do we need more sensual pleasures or do we need to find a higher, simpler, more rewarding way of life?' Of course, there are different types of people. Some are completely sensual and are drawn to the world in order to fulfil innumerable desires and ambitions. Others are more moderate and live a balanced life, being able to integrate their inner feelings and perceptions with external sensual experiences. Then there are those whose sensual desires are marginal. Having exhausted their worldly ambitions, they are more drawn to spiritual life.

For those who basically seek a higher mode of existence, the path of sannyasa offers the most direct route to real inner fulfilment. Even for those who are moderately and totally sensual, sannyasa offers a broader path into life, eventually culminating in the highest experience of liberation and attunement with the whole cosmos.

Most of us have many desires and ambitions. These in themselves are not bad, but when we make their fulfilment our sole purpose in life, we lose our divine direction. It is at this very point that life becomes a cursory existence full of frustration, dissatisfaction and unhappiness. People who are always looking outside of themselves for pleasure and contentment never find it. This is why nobody is satisfied. Everywhere you go you find that the husband is tired of his wife, the wife is unhappy with her husband. Parents are fed up with the children, children won't listen to their parents.

Nobody is happy with their work, unions are on strike, students hate school, women no longer want to remain in the home. There is never enough money to pay all the bills, the house is too small, the car is too old, the clothes unfashionable. Even on the national level people are never satisfied with the political leaders and government schemes, taxation is too high and government funds are being wasted.

Nowhere is it possible to find any satisfaction, any peace in this world. Therefore, we must make our own peace, our own higher, simpler and satisfying life. Sannyasa is one way. It is not necessary to be an ascetic to renounce the narrow confines of personal life and take up the broad path which encompasses all humanity. Sannyasa is not only for those who have exhausted their desires; it is the key to a fuller life. It is the universal path on which we are able to fulfil our basic need to expand our experience and awareness of life by working in the world for the evolution of all beings. In fact, this is the only true path to peace and satisfaction, especially for young people who are the most restless and dissatisfied of all. The time is not far off when we will see thousands of young people fulfilling their frustrated dreams through sannyasa.

संन्यास का वास्तविक अर्थ

संन्यास के बारे में हमारे देश में सामान्य विचारधारा यही रही है कि संन्यासी समाज-मुक्त होता है, सामाजिक नियम उस पर लागू नहीं होते। जहाँ रहे, जैसे रहे, संन्यासी के सामने सारे रास्ते खुले रहते हैं। वह जिस योग्य है, उसी प्रकार का योग करे। मगर यह विचारधारा पूरी तरह सही नहीं है। संन्यासी का प्रमुख कर्त्तव्य अपने लिये नहीं, दूसरों के लिये जीना होता है। जिस दिन तुम संन्यास लेते हो, उसी दिन तुम्हें मन में एक संकल्प करना पड़ता है, 'आज से मैं अपने लिये उतना ही जियूँगा जितना जरूरी है। बाकी मेरी बुद्धि, मेरा दिमाग, मेरा शरीर, मेरा पैसा, मेरी अक्ल, मेरी चतुराई, मेरी उपलब्धियाँ, मेरी योग्यताएँ – सब दूसरों के लिये हैं, मेरे लिये नहीं।'

गृहस्थ अपने लिये, अपने बीवी-बच्चों के लिये, अपने भाई-भतीजों के लिये संकल्प करता है, उसकी सारी शक्ति उसमें लग जाती है, लेकिन संन्यासी अपने लिये उतना ही रखता है जितनी जरूरत है, बाकी सभी चीजें दूसरों के लिये करता है। अगर उसके पास दो लाख रुपये आ जाएँ तो उसमें से पाँच हजार अपने लिये खर्चा करेगा और एक लाख पंचानवे हजार दूसरों के लिये।

संन्यासी के जीवन में सबसे बड़ा हिस्सा दूसरों का होना चाहिए। ऐसी भावना आने से पहले संन्यास नहीं लेना चाहिये। अगर तुम सोचो कि संन्यास लेकर हम कुछ बनें तो वह गलत भाव है। अगर तुम चाहो कि गुरु बनें, बड़ा-सा आश्रम हो, लोग हाथी की सूँड जितनी मोटी-मोटी मालाएँ गले में डालें, पैर धोवें, चरणामृत पियें तो फिर संन्यास न ही लो तो बेहतर है। संन्यासी को सोचना चाहिए कि समाज की इस समय क्या जरूरत है। अभी योग की जरूरत है तो हम योग सिखायेंगे, या हम एक अस्पताल खोलेंगे जहाँ मुफ्त इलाज होगा, या हम अनाथालय खोलेंगे, जहाँ अनाथ बच्चों का पालन-पोषण होगा।

हमने ऐसा ही तो किया। हमारा मूल अध्ययन तो वेदांत का रहा। हमने आज तक योग पर कोई भी शास्त्रीय किताब नहीं पढ़ी, न अंग्रेजी में, न संस्कृत में। वेदान्त पर शंकराचार्य के सारे भाष्य, रामानुजाचार्य के सारे भाष्य, अनेकों विद्वानों के लिखे सारे भाष्य हमने संस्कृत में पढ़े हैं। हम हिन्दी या अंग्रेजी

से ज्यादा अच्छी संस्कृत बोलते हैं। हमारी मातृभाषा संस्कृत है, मगर हमने अंग्रेजी को चुना। वेदांत को छोड़ दिया, योग को चुना। क्यों? इसलिए कि हमें मालूम था बाजार में आज योग ही बिकेगा, वेदांत नहीं। सफलता के लिए बाजार के मुताबिक चीज ही बेचनी चाहिए न! गर्मी के मौसम में ऊन का कपड़ा बिकता है क्या? वेदांत आज कोई नहीं समझता। क्यों? तुम्हारे पेट में दर्द है, पीठ में दर्द है, घुटने में दर्द है, मन में अशान्ति है, दमा की बीमारी है, मधुमेह का रोग है। सब लोग शारीरिक और मानसिक रूप से रोगी हैं, और योग के पास इसका इलाज है।

समाज की आवश्यकता

सन् 1968 में मैंने पहली बार दुनिया का भ्रमण किया। पाँच महीने मैंने सब जगह का सर्वेक्षण किया, पता लगाया कि दुनिया में कौन-सा माल बिकेगा, जिसे अंग्रेजी में मार्केटिंग रिसर्च कहते हैं। मेरा पहला पड़ाव था सिंगापुर।

वहाँ मैंने कोई निर्णय नहीं लिया। दूसरा पड़ाव था ऑस्ट्रेलिया, वहाँ निर्णय ले लिया – हठ योग। आसन-प्राणायाम, बस यही दो चीज। उसके बाद अमेरिका पहुँचते-पहुँचते मेरा निर्णय पक्का हो गया। योग के अलावा कुछ मत बोलो। धर्म की बात मत बोलो, वेदांत की बात मत बोलो, ब्रह्म-आत्मन् की बात मत बोलो, केवल आसन-प्राणायाम पर बोलो, नेति-धौति-बस्ती के बारे में बोलो। यह सब तो हमने कभी सीखा नहीं था, पर फिर भी सिखाना शुरू कर दिया। बोलते-बोलते वाणी खुल गई, सरस्वती मुख में आ गई, योग पर जो बोला आज उसे लोग प्रामाणिक और आधिकारिक मानते हैं।

संन्यास लेने के बाद हर संन्यासी को इसी तरह से सोचना पड़ेगा, संकल्प लेना पड़ेगा कि मैं क्या करूँ। तब उसे पता चलेगा कि इक्कीसवीं शताब्दी में मानव समाज को किन चीजों की जरूरत है। सन् 1968 में मैंने जब मार्केटिंग रिसर्च किया, तब आसन-प्राणायाम का पता चला। सत्तर के दशक में जब मैं बाहर जाता तो देखता कि बाजार बदल रहा है। लोग ध्यान, कुण्डलिनी, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, चक्र आदि के बारे में जानना चाह रहे हैं। मैंने इन विषयों पर बोलना शुरू कर दिया। उसके बाद जब देखा कि लोग तंत्र पर पूछने लगे हैं तो तंत्र पर चर्चा शुरू की।

दुनिया एक बाजार है और उस बाजार के मुताबिक माल रखना चाहिए। इक्कीसवीं शताब्दी में भी आसन-प्राणायाम ही चलेगा क्या? या फिर लोग तुमसे तंत्र के बारे में पूछेंगे, कुण्डलिनी के बारे में पूछेंगे? हो सकता है वेदांत पर ही पूछने लगें कि आत्मा क्या है, ब्रह्म क्या है? तब क्या करोगे? क्या यही कहोगे कि हमें तो गुरुजी ने आसन-प्राणायाम सिखाया है, वही सिखायेंगे। तब तो कहीं झोपड़ी बनाकर वहीं बैठे रहो!

समाज को वही चीज दो, जिसकी उसे जरूरत है। सन् 1956 में हमने पूरे गुजरात का भ्रमण किया। पाटन, भावनगर, राजकोट, अहमदाबाद, पोरबन्दर, सब जगह गए। मगर उन दिनों हम योग नहीं सिखाते थे, नेत्र शिविर लगाते थे। हजारों का मुफ्त ऑपरेशन करते थे। हमको पैसा इकट्ठा करने की कला तो है ही, वहाँ जाकर खूब पैसा इकट्ठा करते थे, फिर जगह-जगह नेत्र शिविर लगाते थे, सेमिनार आयोजित करते थे, वेदांत पर प्रवचन करते थे। यह मुंगेर आश्रम से पहले की बात है। हम ऋषिकेश से अपने गुरुजी की ओर से जाते थे और एक डॉक्टर अध्वर्यु के साथ नेत्र शिविरों में मोतियाबिन्द का ऑपरेशन करते थे।

सर्वश्रेष्ठ मार्ग – परमार्थ

जैसे-जैसे दुनिया में इन्सान के ऐशो-आराम और भोग की चीजें बढ़ती जा रही हैं, वैसे-वैसे लोगों के मन में योग के प्रति जिज्ञासा और इच्छा भी होती जा रही है। आज लोगों के मन में बहुत अशान्ति है। योग में जरा-सी भी रुचि न होने के बावजूद हमने अपने गुरु के कहने पर योग का प्रचार किया। हमारे गुरुजी ने कहा, तुम विलक्षण प्रतिभा के धनी हो, जाओ, समाज में योग का संदेश फैलाओ। उनके कहने से ही हमने यह बीड़ा उठाया। हमें दूसरों के लिये काम करना हमेशा से अच्छा लगा, किसी को खाना खिलाना, किसी की शादी करा देना, किसी को दवाई दे देना, यह हमारा स्वभाव है। ऋषिकेश में भी हम यही करते थे। वहाँ हमने टेहरी सरकार से जमीन लेकर कोढ़ियों के लिए डेढ-दो सौ झोपड़ियाँ बना दीं, उनके खाने-पीने और दवाई का पूरा इन्तजाम कर दिया। हम वहाँ यही सब किया करते थे।

हमें ऐसा लगता है कि मनुष्य का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है परमार्थ। केवल डरपोक आदमी स्वार्थ में रहता है। ऐसा व्यक्ति सिर्फ अपने बारे में सोचता है, पता नहीं मर तो नहीं जाऊँगा, बुढ़ापे में मुझे कौन देखेगा, कहीं अंधा न हो जाऊँ, मेरा बेटा तो होना ही चाहिये। लेकिन निर्भय आदमी स्वार्थ नहीं देखता, वह सोचता है कि मैं दूसरों के लिये काम आऊँगा। ज्यादा-से-ज्यादा क्या होगा, अंधा हो जाऊँगा, मर जाऊँगा, मरना तो सबको है, थोड़ा आगे या पीछे, क्या फर्क पड़ता है।

परमार्थ का काम हमें पहले से ही अच्छा लगता था। जब से यहाँ आये हैं, हमारे दिमाग में यही चिंतन चलता रहता है, किसको गाय देनी है, किसको ठेला देना है, किसको रिक्शा देना है, किसको दवाई देनी है, किसके घर में गरीबी है। यह सब कैसे मालूम पड़े, हम तो बाहर जाते नहीं। पर हमारे दिमाग में यही चीज रहती है कि कैसे पता करें कि कौन दुःखी है, कैसे पता करें कि हम क्या मदद कर सकते हैं। अगर हमें पता चले कि यह परिवार भूख से पीड़ित है तो हम जरूर कुछ-न-कुछ मदद करेंगे।

मनुष्य जीवन का सबसे पहला कर्तव्य है दूसरे के काम आना। योग, वेदान्त, धर्म, मुझे आज कुछ भी पसंद नहीं, सब फालतू लगता है। मनुष्य जब तक दूसरे के काम न आवे, सारा धर्म बेकार है, सारा योग बेकार है। मैंने योग सिखाया क्योंकि मेरे गुरु ने आदेश दिया था। मैंने मुंगेर का आश्रम अपने लिये नहीं बनाया, और मुंगेर जैसे तो हमारे पचासों आश्रम हैं। दक्षिण

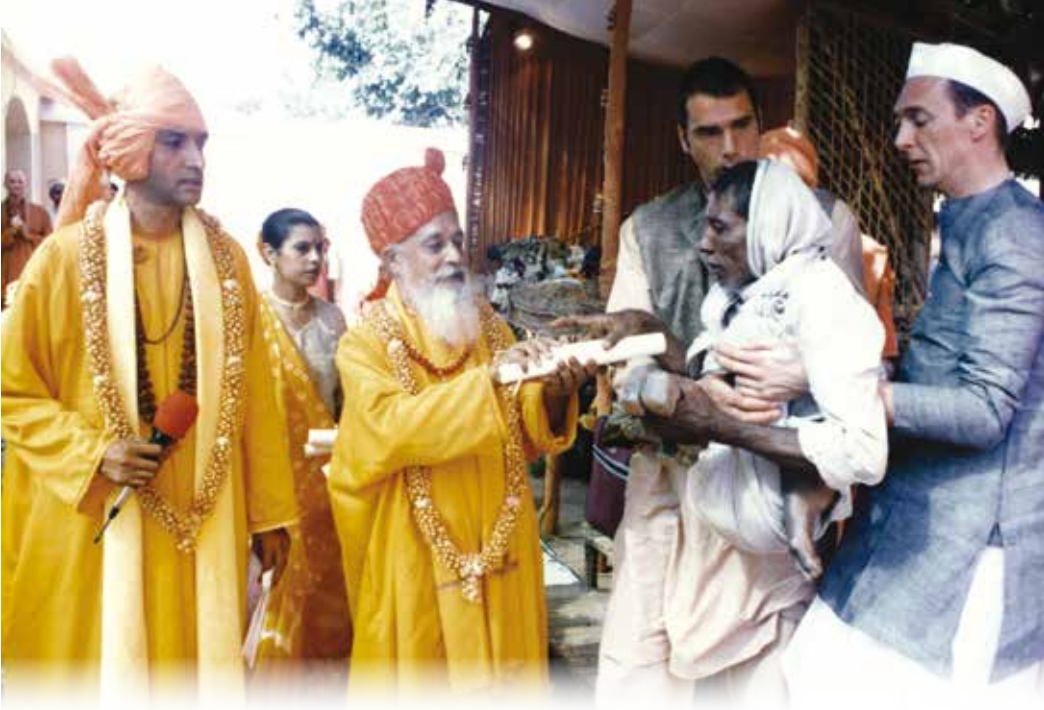

अमेरिका में एक आश्रम से दूसरे आश्रम गाड़ी से नहीं, हेलिकॉप्टर से यात्रा करते थे। इतने दूर-दूर तक फैले हुए थे। मगर मुझे इन चीजों में जरा भी रुचि नहीं थी, केवल गुरु के कहने से किया। मेरी एक ही रुचि है, 'भगवान! किसी तरह से मुझे बतलाओ कि किसकी क्या मदद कर सकूँ। किस लड़की को मैं साड़ी दे सकूँ, किस लड़के को पढ़ाई के लिये पैसा दे सकूँ, किस गरीब के लिये मैं घर बना सकूँ?'

मनुष्य जब मनुष्य के काम आए तभी वह मनुष्य है, अन्यथा वह निरा पशु है। चाहे तुम साधु हो या गृहस्थ, धनी हो या गरीब, जो पैसा तुम्हारे पास है वह न तुम्हारा है न तुम्हारे बाप का, वह जनता का है। समाज ने तुम्हें कपड़ा दिया है, भोजन दिया है, सुरक्षा दी है, सब कुछ दिया है, लेकिन तुमने समाज को क्या लौटाया?

आज यही मेरा दर्शन है। गुरुजी ने मुझे योग प्रचार का जो आदेश दिया था उसे सन् 1983 में पूरा करके उद्यापन कर दिया। अब मैं न उपदेश देता हूँ, न योग सिखाता हूँ। योग मेरा सम्प्रदाय नहीं है। वेदांत भी मेरा सम्प्रदाय नहीं है और धर्म भी मेरा सम्प्रदाय नहीं है। मैं एक ही चीज में यकीन करता हूँ। जब तक मैं जीवित रहूँ, मेरा शरीर, मेरा मन, मेरा धन किसी के काम आता रहे, किसी को कुछ फायदा होता रहे। नदी हमेशा देती है, हवा भी हमेशा देती है,

भगवान भी तो हमेशा देते ही हैं। ये सब परमार्थी हैं। इनकी तरह जो दूसरों के काम आवे, वही सच्चा मनुष्य है।

तरुवर फल नहीं खात है, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर॥

हर एक व्यक्ति को मरने के पहले अपना कमाया हुआ पैसा दूसरों के काम में लगा देना चाहिये, बच्चों के लिये कुछ नहीं छोड़ना चाहिये, नहीं तो बच्चे कमजोर हो जाते हैं। आप लोग शायद सहमत न हों क्योंकि आपकी सोच दूसरी है। जीवनभर तो आप यही सोचते आए हैं कि अपने बाल-बच्चों का भला कैसे करें, मगर अब यह सोचिये कि दूसरों का भला आप कैसे कर सकते हैं। जिस दिन आप सब दूसरों के लिये सोचना शुरू करेंगे, आपका समाज रातों-रात बदल जाएगा। यह सच है। वह मनुष्य कैसा जो दूसरों के लिये न जिये? संन्यासी का चिन्तन परमार्थ-प्रधान होना चाहिए, स्वार्थ-प्रधान नहीं। अगर संन्यासी ही स्वार्थी हो जाए तब तो हरिः ॐ तत्सत्, दुनिया गई चूल्हे में। ■

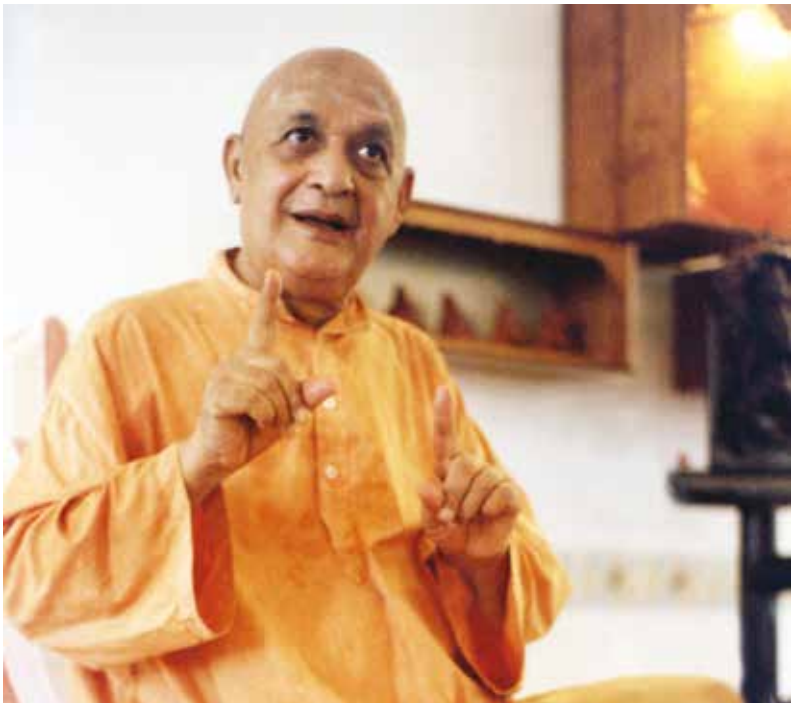

Aspirations

Swami Satyananda Saraswati

One who aspires is an aspirant. If you are aspiring for sannyasa you are an aspirant. If you are aspiring to have the experience of the divine, you are an aspirant. If you are aspiring to be a *chela*, disciple, you are an aspirant. Every form of evolved thinking is an aspiration. The aspiration for sannyasa is a very high quality of aspiration. To practise sannyasa while you are a householder is the highest quality of aspiration. When you are involved with the matters of discharging your responsibilities and obligations, and trying to understand your place and relation to the events of life and to react positively to every experience of life, you are a higher quality of aspirant.

Sannyasa is a very difficult aspiration because it is hard to extricate useless items of life. The different desires which you manifest are not original and natural, they are imposed on you by virtue of your social training and therefore when you are aspiring for sannyasa, you have to realize what is essential and what is not. It is not only with reference to the objects outside. It is something to do with your inner awareness. Though sannyasa has much to do with the external systems of life, it is not the total definition of sannyasa.

Sannyasa is a type of awareness. Some are born with that awareness, and others do not have it, and therefore this kind of sannyasa is an aspiration. When you have a guru and you consider yourself a disciple, you follow his spiritual instructions for your spiritual illumination. You are solely guided by his spiritual instructions. That is your discipleship. However, as you go through the pavements of life from moment to moment and feel that you have been wasting a lot of mental, material and emotional material uselessly, at that time you begin to think that it is very important for you to unite with your inner self.

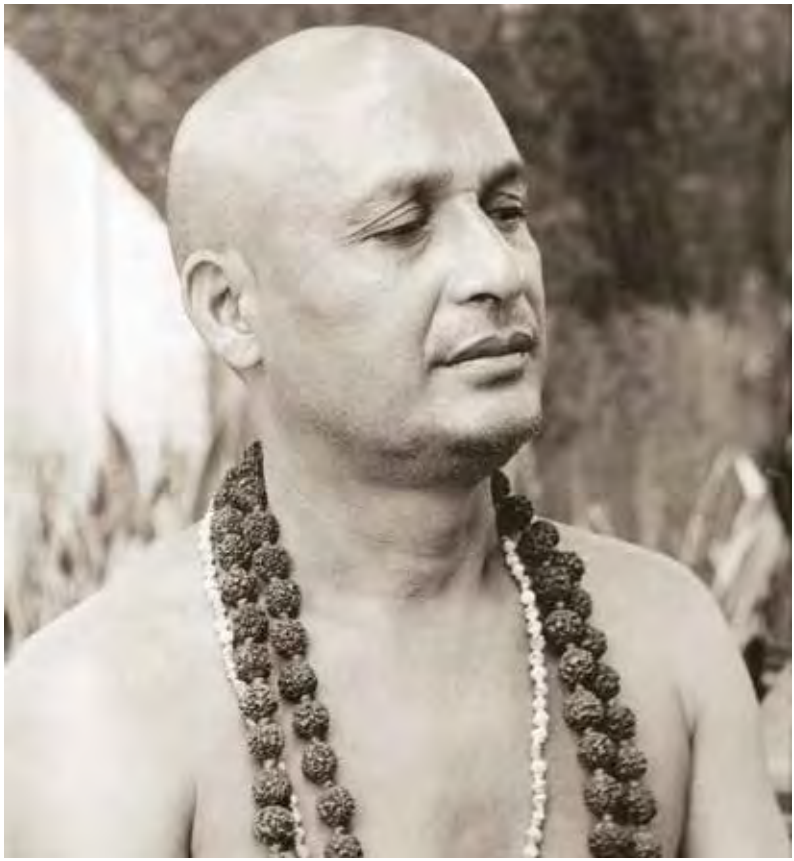

Again and again you try to withdraw yourself from material consciousness to spiritual consciousness. Again and again you withdraw your mind from oscillating from one point to the next. Again and again, you try to make your mind more and more tranquil and peaceful, and still you have excitements, emotions and stimulations. If you are unable to do that, you look hither and thither for the way and you try one method or the other. You look into books and you look for a guru. Every time you have the aspiration in your mind, 'When shall I break myself from the lower limitations of life and unite with the expansion of the cosmos.' That is called the aspiration. Such a man is called aspirant or a sadhaka, who is doing sadhana.

The Inner Recess

Swami Satyananda Saraswati

Obligations are the enactments of life. You have created them. You have committed them. Now, there is a self-considered emotion that you have to fulfil them. There is a man who defecated on a bed sheet. When he went to clean it he said, "Well, I have to clean it." Why did he make it dirty? This is our concept and idea of duty and responsibility.

During moments of ignorance, we cannot think very much. I can assure you that a man can live a complete life without involving his real person. For that it is necessary that he understands what he is doing. When we play a drama, do we involve our personality there? When we play a drama, does what happens in the drama affect our real situation? The drama or comedy does not affect your person, because you know that it is a drama. At a particular point of enactment, you are fulfilling the role in the best possible way as an actor. If you have to weep you weep, if you have to laugh you do it, if you have to love you love. If you have to lament for the death of your mother, that also you do. You have to fulfil the role that you are given, but when you come out of the studio you are a different person. It was not in a dream. It was a part of an enactment. Therefore, a householder should always understand that he is playing a drama, and he should play it well. He should not be a bad actor and say in the middle of the drama, 'This is only a drama'.

At the same time, there is an inner recess in our personality. There is an area which is calm, quiet and silent. There is an area which is full and vibrating with experience. You just go there. This is the spirit of sannyasa when you begin to realize that you can play both roles at the same time. You can look after your husband, wife and children. You can go to the office, market and factory, but at the same time you can be in touch

with the inner self. From today you can say, "I am a swami," but you may forget it. You have one dhoti and one mala. Make it a point to wear it in the morning when you are meditating. You will not go with a dhoti into the office and put everybody to embarrassment. At the time of your spiritual practice, it will remind you every morning, "I am a swami. I am a swami. I am a swami."

It is a very simple logic. You can always go into the military with this dress and fight. You do not have to put one badge, or two badges, two or three stars. You can also have a machine gun, go to the battle field and fight with the same dress. The system that you follow is necessary. The moment you put the uniform, two or three stars, and a big cap, it is pretence. Courage comes, fear dies, death loses its value. You forget wife and children; you do not care what is a machine gun or a bullet. You do not know what death really means. This is the importance of a uniform. So, if the military uniform can have such a tremendous change on the fundamental functions of the human mind, what about the dress of a swami?

From time to time, some of the householders who have developed a spirit of sannyasa must live together, work together, strive together, discuss, talk and reflect together. During that period, they should simplify their requirements. They should bring down their necessities to the bare minimum. That is not making you backward, I believe. So during these periods you live a very simple life so that your mind is not dependent on the external materials. That is why the ashram life is designed the way it is.

When you live in an ashram you should look like a swami. When you go back from the ashram you should look like a gentleman, with a nice dress, cosmetics, and so on – all that is beautiful and attractive, all that is maya. Here it should be put into the suitcase because nobody is going to admire your beautiful clothes, we are used to seeing the beauty inside. In the ashram, an ugly person can be beautiful, and a beautiful person can be ugly. Even a person with a clean dress can be

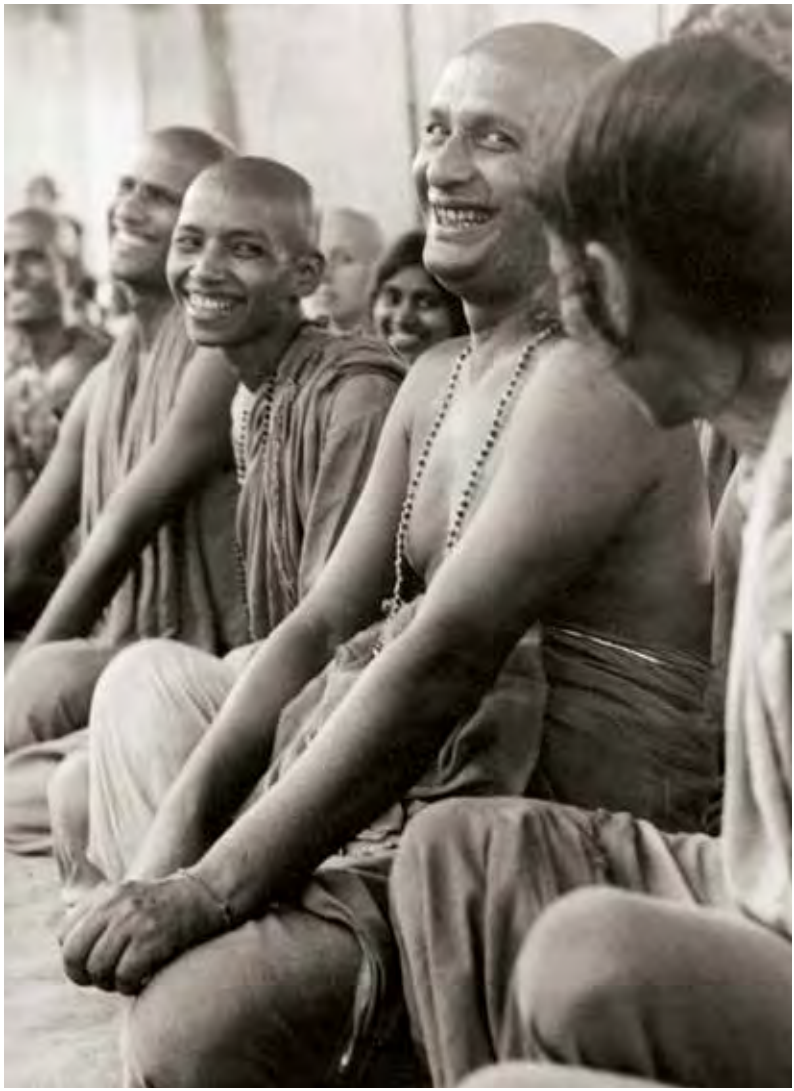

dirty and a person with a dirty dress can be most clean. That is how I have visualized the life of every householder.

I tell everybody, "Go to the ashram. Live there for some time and participate in everything. Put down the patterns of life that are in the mind. Nothing to do, nothing to undo. Work in the kitchen, in the garden, anywhere you like." ■

Exhausting Samskaras

Swami Satyananda Saraswati

The mind registers every objective experience and every subjective thought, feeling and emotion that arises in the mind of an individual. Sometimes these emotions and thought currents are conscious, but mostly they are unconscious – we do not even know they exist. These registered impulses and

impressions, in the depth of the mind, become the *samskaras*, the dormant potential of man's existence. Some of them can be experienced in this life and they influence our thoughts, actions, philosophy and reactions. Success and failure, your accomplishments and expressions in life, are all controlled by these samskaras, the seeds of life.

Japa – exhausting samskaras

There is a method by which these samskaras can be exhausted. If these samskaras are not exhausted they become the *karma*, the life-force and later they become what we call our personality, the symbol of our incarnation.

When you sit down for japa or when you meditate many thoughts come to the mind. You are practising your mantra, *Om Namah Shivaya*, but at the same time thoughts and reflections of the past, anticipations of the future and worries about the present keep on hovering in your mind. What do you do then? Most of you withdraw your mind from those thoughts and bring it back to the point of concentration. That is a mistake. A person, who has not been able to identify himself with the sattwic state of mind and transcended the rajasic plane of mind, should never try to control the mind.

Chitta vritti nirodhaha – controlling the vrittis, modifications and expressions of total consciousness is the ultimate definition. Most of us do not belong to a sattwic state; either we are tamasic or rajasic. If you take it that you are rajasic, then during japa, when thoughts come to your mind, when passions assail you, you should not control them. You should observe them. You must try to witness the thoughts, experiences, passions, emotions and memories while you are continuing your own japa, maybe *Om Namah Shivaya*, or anything else.

This is one way to exhaust the karma. You exhaust the samskaras not karma. You are exhausting the samskaras, and when you are able to exhaust the samskaras they will not fructify, they will not be born, they will not be transformed in the form of karma.

Ashram – exhausting karmas

Besides this there is another way of exhausting the karma: choose a difficult way of life, do not aspire for a luxurious or comfortable life. In the ancient times, householders used to go to ashrams for a period of fifteen days to six months. They lived there like recluses. That was their training. They slept on the floor on a carpet, shaved like sannyasins and ate food once a day. They did not read newspapers, hear transistors, or meet their own kith and kin, but spent their time in what we call austere situations. The word used for this is *tapasya*. Every householder and sannyasin can do tapasya. As it is the cleanser of karma, it changes the entire personality.

Rama went to gurukul. Rama was the son of an emperor. He lived for twelve years in his guru's ashram, living a simple life, sleeping on the floor, going out to collect things for the ashram. Then when he went out of Ayodhya on the insistence of Kaikeyi, he lived in the jungle, in the forest, for fourteen years. He did not suffer, because he had been given that initial training. Although he was the son of an emperor, he lived like a sadhu, a tapasvi. He lived like a mahatma for twelve years and it was that initial training that gave so much strength to Rama to face the rigours of his exiled life.

Initiation

The third method is initiation, *diksha*. Everybody who is keen to unburden the karma should get initiated into spiritual life. I am not talking about religion, I am talking about spiritual life. Initiation into spiritual life means that you have to be initiated into a mantra and a method, *prakriya*. You practise the mantra and the prakriya every day – that is called *sadhana*. Like this, there are many ways by which you can get rid of karma.

The same thing was said by a great sannyasin, Nagarjuna, a Buddhist monk, who went to Greece to preach. There he met the King Menander of Greece. The king asked him the same question of how to exhaust karma. Nagarjuna said, 'Take a handful of wheat seeds and put them in the soil. They will grow

after a week and they will produce more wheat. You collect those seeds, sow them again; they will produce more wheat. So from one handful of wheat seeds you get a quintal, many quintals of wheat in the course of time. If you do not want that, then you should fry the seeds first before sowing them. The handful will become nil. They will not grow. That is how you have to burn the karma. A person who has burned his karma can operate in this world as a professor or businessman, an industrialist or politician, a police officer or school teacher, a husband, a father, a swami, a labourer.

One point to keep in mind is that you should not live or act by the force of karma. You must act by the force of spirit. Why are you working? Why are you living? This is the dictate of my spirit not the dictate of my karma. My karmas have not made me a swami; my spirit has made me a swami. My karmas have not made me a husband or wife. My spirit has made me – I should be what my spirit wants. If my atma and my God wants me to be a swami, I should not be an industrialist. It is the command of that higher force that a man must listen to. ■

संन्यास और वैराग्य

मनुष्य आगे की कम सोचता है, पीछे की ज्यादा। उसका भूतकाल से बहुत मजबूत सम्बन्ध रहता है। सुख-दुःख, आशा-निराशा, जन्म-मृत्यु, गरीबी-अमीरी, रोग-बीमारी, उसके दिमाग में यही ज्यादा रहता है। इसको कहते हैं राग। पन्द्रह-बीस साल पहले इतना बड़ा घर था या इतना छोटा घर था, माँ खराब थी या अच्छी थी, बहन मर गई, टी.बी. हो गया, इतने बड़े जमींदार थे, इतनी गाड़ियाँ थीं, यह जो सुख-दुःख आदमी को पहले हो चुका है, वही आदमी के दिमाग में बना रहता है और बहुत मजबूत रहता है, स्वप्न में भी आता है। राग की परिभाषा, राग की व्याख्या यही है।

वैराग्य

अगर मन को इन चीजों से हटा दो, तो उसको कहते हैं वैराग्य। वैराग्य का मतलब भूतकाल के अनुभवों की तृष्णा को हटा देना। भूतकाल सत्य नहीं है, आज सत्य है और आने वाला कल सत्य है। न प्रेम सत्य है, न घृणा, आशा और निराशा, पर आज जो है, वह सत्य है। पेट में आज दर्द हुआ, सत्य है। उसका उपचार करो। कल पेट में दर्द हुआ था, वह आज सत्य नहीं है।

राग से मुक्त होना बड़ा मुश्किल है। जो मुक्त हो गया, उसके लिए संन्यास सरल है, नहीं तो संन्यास कठिन है। संन्यास बहुत सरल भी है और बहुत कठिन भी। हर एक की मानसिकता पर अलग-अलग असर पड़ता है। बहुत-से लोगों को अपना जन्मदिन बहुत याद रहता है। उस दिन अगर किसी ने बधाई नहीं दी तो बहुत निराशा होती है। ये छोटी-छोटी चीजें संन्यास में बाधाएँ बनती हैं।

अगर दिल्ली जाना हो तो पहले रेलवे टाइम-टेबल देखना पड़ता है, या किसी से पूछना पड़ता है कि दिल्ली के लिए कौन सी गाड़ी पकड़ें, कितने बजे जाती है, क्या किराया है? यह सब जानकारी पहले चाहिए। उसी तरह अगर आदमी आध्यात्मिक मार्ग में जाना चाहता है तो उसे कुछ जानकारी भी तो होनी चाहिए न? लोग तो अपने ढंग से सोचते हैं, आध्यात्मिक मार्ग ऐसा होगा, यहाँ से कुण्डलिनी जागेगी और ऊपर चली जाएगी, पर वास्तव में आध्यात्मिक मार्ग क्या है? ऋषि-मुनियों ने आध्यात्मिक मार्ग की क्या व्याख्या की है?

हमारे यहाँ वैदिक धर्म में अध्यात्म मार्ग के बारे में बहुत चिन्तन रहा है। हर एक ने अपनी-अपनी व्याख्या दी है। गीता की व्याख्या अलग है, योग वाशिष्ठ अध्यात्म की अपने ढंग से व्याख्या करता है, उपनिषदों की अपनी अलग व्याख्या है। कुण्डलिनी योग और हठयोग की भी अलग-अलग व्याख्या है। कभी-कभी एक व्याख्या दूसरे से मेल नहीं खाती है। दिल्ली पहुँचना है, कौन-सी गाड़ी पकड़ोगे? देवघर से दिल्ली के लिए एक गाड़ी होगी, बम्बई से दूसरी, मद्रास से तीसरी। दिल्ली जाने वाली गाड़ी तुम्हारे वर्तमान स्थान पर निर्भर करती है। उसी प्रकार अध्यात्म की व्याख्या मनुष्य के जन्म के अनुसार होती है। तुम्हारा रास्ता अलग है, हमारा अलग। सब एक ही रास्ते से कैसे जा सकते हैं? किसी में सतोगुण प्रबल है तो किसी में तमोगुण, किसी में लोभ प्रबल है, तो किसी में कामना। एक ही रास्ते से कैसे जायेंगे?

पहले उपनिषदों और गीता जैसे शास्त्रों को पढ़कर देखना पड़ेगा कि कौन-सा रास्ता सही बैठता है। संन्यास रेल की पटरी है जिस पर ट्रेन चलती है। केवल संन्यासी बनने से काम नहीं चलता है, यह भी पता लगाओ कि पटरी पर कौन-सी ट्रेन जाएगी, तुम्हारे लिए कौन-सी ट्रेन उपयुक्त है। उपनिषदों पर स्वामी शिवानन्द जी और स्वामी चिन्मयानन्द जी जैसे बहुत-से महात्माओं

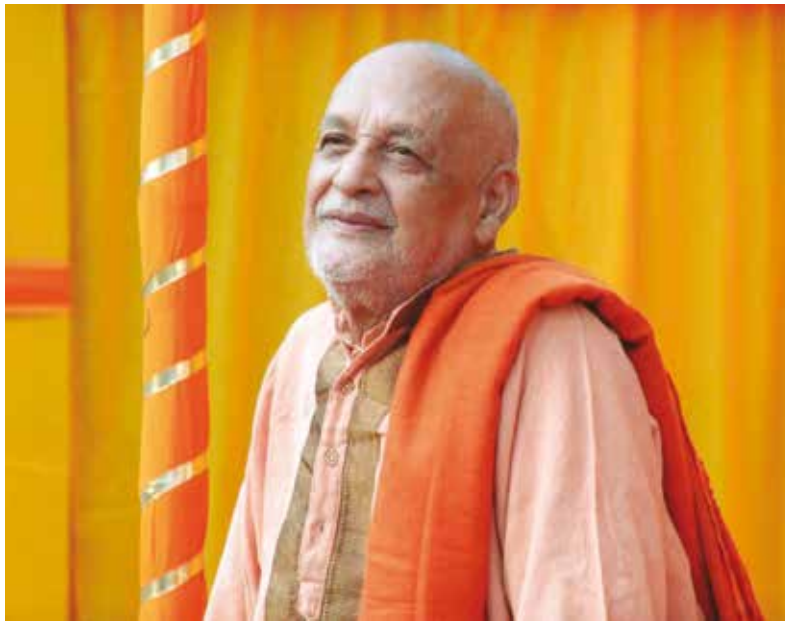

ने लिखा है। गीता पर तो बहुत-सी व्याख्याएँ हैं। स्वामी शिवानन्द जी, श्री अरविन्द, भक्ति वेदान्त, स्वामी चिन्मयानन्द जी, महात्मा गाँधी और विनोबा भावे जैसे मनीषियों ने गीता की व्याख्या की है। अपनी नौकरी-पेशा करते हुए जो बाकी समय मिले उसमें इन ग्रन्थों का स्वाध्याय करना। कहने का मतलब तुरन्त सब छोड़-छाड़ कर आ गए, यह गलत है।

देखा जाए तो संन्यास सबसे सरल चीज है। संन्यास का मतलब बीवी भी छोड़ो, बच्चा भी छोड़ो, यह भी छोड़ो, वह भी छोड़ो, सब छोड़ो। जबकि गृहस्थ जीवन कठिन है, यह भी जोड़ो, वह भी जोड़ो। उसमें बहुत मेहनत लगती है। मगर लोगों को जोड़ने में मजा आता है, छोड़ने में नहीं। इसलिए तुम अपनी नौकरी भी करते रहो, अध्ययन भी करते रहो, छुट्टी में आश्रम आओ और आश्रम आकर कर्मयोग करो। कर्मयोग के बिना योग सधेगा नहीं। कर्मयोग बहुत वैज्ञानिक विधि है, इससे शरीर और मन में संतुलन आता है।

छुट्टियों में आश्रम भी आना चाहिए, वहाँ सेवा भी करनी चाहिए, सत्संग भी करना चाहिए। फिर घर लौट जाना चाहिए। इसलिए नहीं कि संसार में लौटना है, बल्कि इसलिए कि संन्यास लेने वाले को जब तक संसार में अपूर्णता नहीं मालूम पड़ेगी, तब तक संन्यास सफल नहीं होगा। जब तक तुम्हें यह नहीं लगे कि संसार अच्छा नहीं है, इसमें बहुत झंझट है, बेकार में सर मारते हैं, शादी करते हैं, बच्चा पैदा करते हैं, फिर रोते हैं, तब तक संन्यास नहीं लेना। संसार में लोग पैसा कमाते हैं, फिर पैसा खर्च करते हैं, खूब खाना खाते हैं, बीमार पड़ जाते हैं, दवाई खाते हैं, रात-दिन रोते हैं। संसार में सुख है ही कितना? हर एक आदमी के पास जाकर देख लो। हम तो पिछले सत्तर साल से घूमते रहे हैं, लोगों को देखते रहे हैं। तब पता चलता है कि कितना सुख है। लोग सुख को प्राप्त करने के लिए दुःख उठाते हैं और हँसने के लिए रोते हैं। हमेशा चिन्ता करते हैं।

निर्ममता

संन्यास में केवल एक चीज है, इसमें ममता नहीं है, जबकि गृहस्थ जीवन में मुख्य चीज है ममता। मम पिता, मम माता, मम भ्राता, मम सम्पत्ति, मम प्रेमी, मम स्त्री, मम पति – सबमें में मेरा-मेरा रहता है। संन्यास में मम नहीं है। मगर संन्यासी को साथ ही विद्वान्, गुणवान और होशियार होना चाहिए। बुद्धू संन्यासी कैसा लगेगा! हनुमान जी के लिए कहते हैं न, *'विद्यावान गुणी अति चातुर।'* वे पढ़े-लिखे, गुणी और योग्य थे, बहुत अधिक बुद्धिमान थे।

जो आदमी विद्यावान होता है, योग्य होता है, बुद्धिमान होता है, वह गुरु का काम भी बहुत अच्छी तरह से करता है – *'रामचन्द्र के काज सँवारे।'*

गेरू कपड़ा पहनकर तो कोई भी संन्यासी दिखता है, पर उतना ही काफी नहीं है। समाज चाहता है कि संन्यासी का समाज के लिए कुछ योगदान हो। यह जमाना उपयोगितावाद का है। अगर समाज में तुम्हारा कोई उपयोग है, तब तो ठीक है, नहीं तो फिर तुमसे कोई मतलब नहीं। आज दुनिया में सब जगह यही है। ईसाई धर्म में कमजोरी क्यों आई? इसलिए कि जिस वक्त ईसाई धर्म शुरू हुआ, उस वक्त यूरोप गरीब था। औद्योगिक क्रांति के पहले यूरोप की हालत भी यही थी। ईसाई पादरी अस्पताल, स्कूल और अनाथालय खोलते थे, गरीबों की सेवा करते थे। वे समाज के लिए उपयोगी थे, इसलिए लोग उनको बहुत मानते थे। सेंट फ्रांसिस, सेंट ज़ेवियर, ऐसे कई लोग थे जो चर्च के आधार थे। इन लोगों की बहुत इज्जत थी।

इसी बीच इन लोगों के देश अमीर होने लगे, सरकार ने स्कूल और अस्पताल जैसी सभी संस्थाएँ अपने हाथ में ले लीं, सामाजिक कार्य अपने हाथ में ले लिया। पादरियों की भूमिका ही खत्म हो गयी। वे अब क्या अनाथालय और अस्पताल चलाएँगे, सरकार की तो अपनी योजनाएँ हैं। चर्च निरर्थक बन गया, उसकी समाज के लिए कोई आवश्यकता ही नहीं रही। इसलिए यदि संन्यासी जीवित रहना चाहते हैं तो उन्हें समाज के लिए उपयोगी होना चाहिए, नहीं तो नहीं रह सकते।

गेरू कपड़ा पहनकर, दो-चार भजन गाकर, कथा कहकर आज संन्यासी जीवित नहीं रह सकता। या तो संन्यासी को शंकराचार्य की तरह होना चाहिए, जो ज्ञान की पुनर्व्याख्या करके समझाए या विवेकानन्द जी की तरह होना चाहिए, या श्री अरविन्द की तरह होना चाहिए, या महात्मा गाँधी की तरह होना चाहिए। आज की दुनिया का यही नियम है। जो चीज काम की है वह ठीक, जो चीज काम की नहीं है, उसे फेंको। संन्यासी को समाज के लिए उपयोगी होना है, चाहे संगीत में, चाहे नृत्य, साहित्य या चिकित्सा में, कहीं भी उसे उपयोगी होना है, नहीं तो वह जीवित नहीं रहेगा। इसलिए आज समाज को नये विचार के संन्यासी की जरूरत है। पाँच हजार साल पुराना विचार आज काम नहीं करेगा। बदलते हुए समाज में संन्यासी को अपने सामाजिक नियमों को बदल कर आगे बढ़ना चाहिए।

संन्यास का त्रिविध स्वरूप

संन्यास के तीन रूप होते हैं – सम्प्रदाय, आश्रम और वृत्ति। ये तीनों अलग-अलग होते हैं। संन्यास सम्प्रदाय में चुटिया काटी, सिर मुड़ाया, मंत्र जपा, गेरू कपड़ा पहना, अब आज से तुम गृहस्थ नहीं हो, शादी-वादी की बात नहीं करना। यह सम्प्रदाय हुआ। संन्यास आश्रम में क्या है? साठ-सत्तर साल की उम्र हो गयी, बाल-बच्चे बड़े हो गए, नाती-पोते हो गए, तो कहीं आश्रम जाकर आराम से रहेंगे, गेरू कपड़े पहनेंगे। ज्यादा उम्र में तो एक ही बार खाना खाने से काम चल जाता है। एक बार खाया और भगवान का भजन किया, फिर एक दिन मर गए। यह संन्यास आश्रम है, जो प्राचीन काल में प्रचलित था।

तीसरी होती है संन्यास वृत्ति। इसमें व्यक्ति की मानसिकता संन्यास की होती है। वह शादी करे, तो भी संन्यासी, बाल-बच्चे रखे तो भी संन्यासी, यह सब नहीं भी करे तो भी संन्यासी। कोई कॉलेज में प्राचार्य है या सचिवालय में नौकरी करता है या अपनी छोटी-मोटी फैक्ट्री चलाता है, वह भी संन्यासी है अगर उसकी संन्यास वृत्ति है। प्रश्न उठता है कि संन्यास वृत्ति क्या होती है? व्यक्ति कुछ भी काम करे, किन्तु जो भी फल मिले, उसे चुपचाप स्वीकार कर ले, न रोकर, न हँसकर। *कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन* – काम करना तुम्हारा अधिकार है, करना पड़ेगा, कोई रोक नहीं सकेगा। तुम शिक्षक बनना चाहते हो, बन सकते हो, तुम फौज में जाना चाहते हो, जा सकते हो। वह

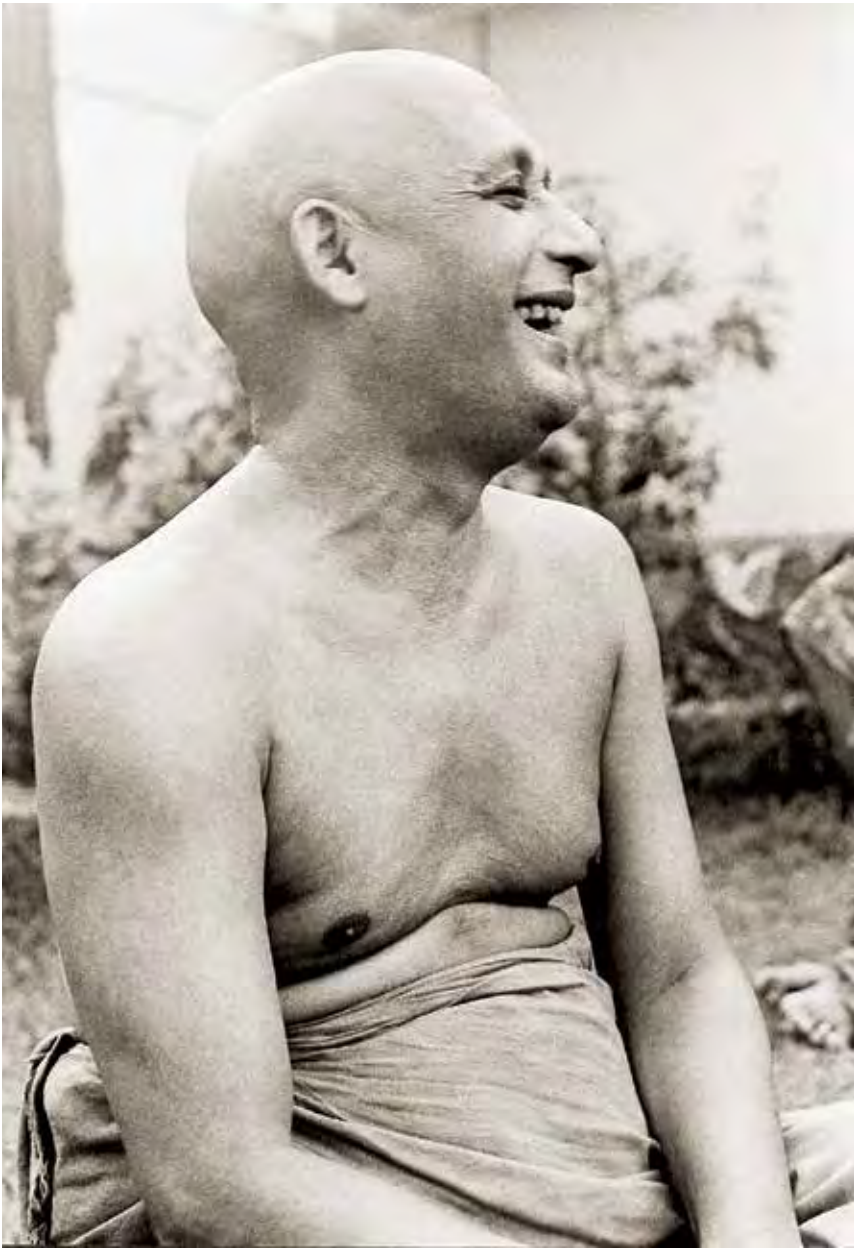

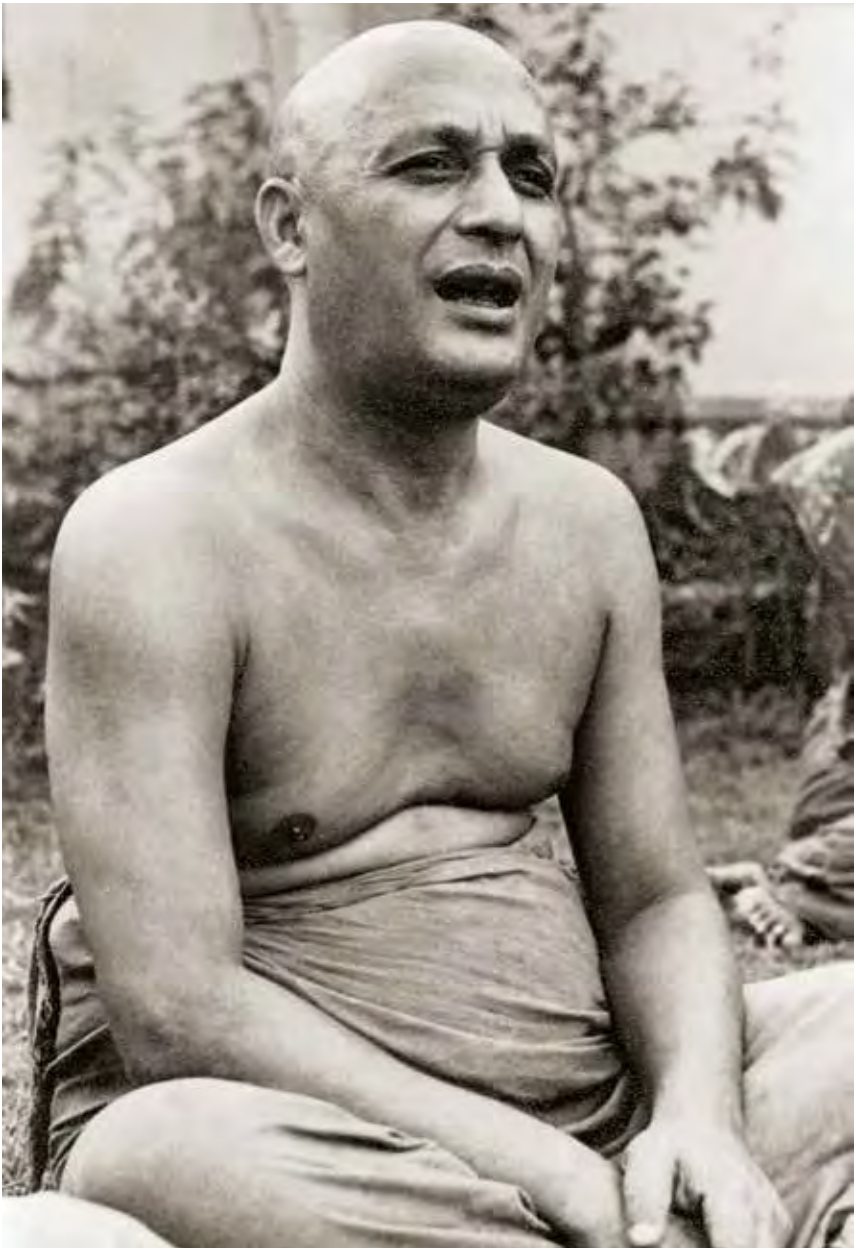

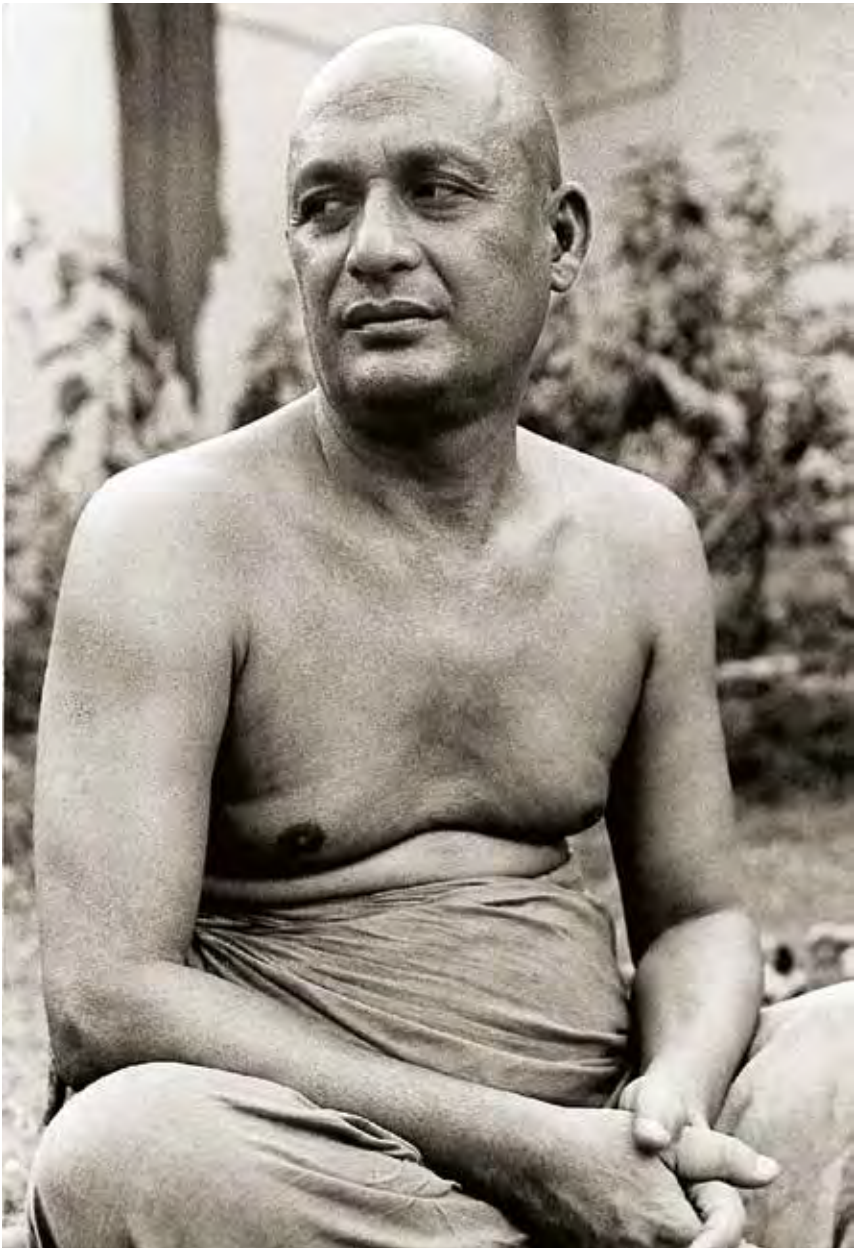

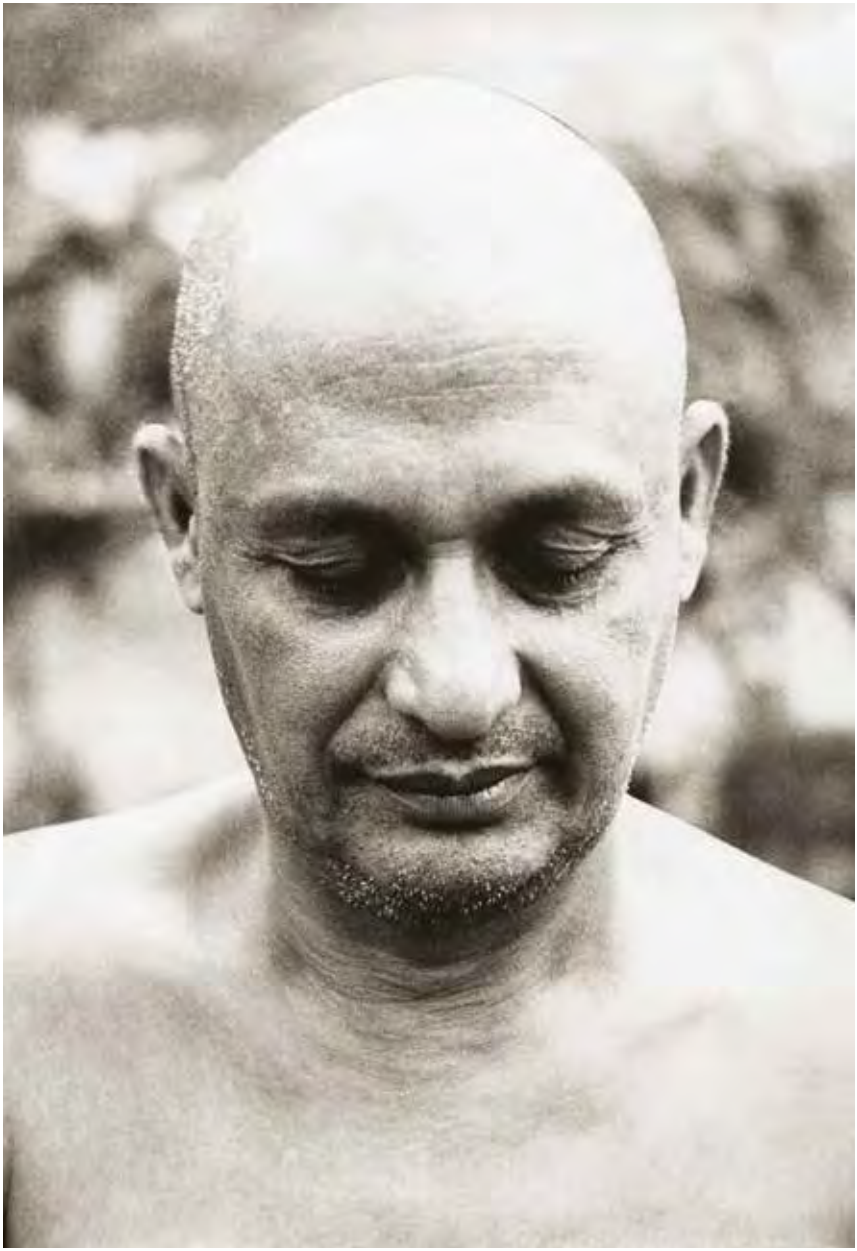

तुम्हारा अधिकार है। मगर उसका जो फल है, उस पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। तुमने बीज लगा दिया, अब पेड़ बड़ा होगा या नहीं, फल खूब लगेगा या नहीं, यह तुम्हारे हाथ में नहीं है। वह इस पर निर्भर करता है कि जमीन कैसी थी, खाद कैसी थी, पानी कैसा था और बीज कैसा था।

मनुष्य का हर एक कर्म बीज होता है, जिसका फल निर्भर करता है, काल, कर्म और स्वभाव पर। संन्यासी अपना कर्म करता है, उससे फल मिले तो उसे स्वीकार करता है, फल न मिले तो उसे भी स्वीकार करता है। कम-से-कम में अपना काम चला लेता है। वह गृहस्थ भी हो सकता है। गृहस्थ का मतलब यह नहीं कि छः-छः लड़की-लड़का पैदा कर लो। बच्चा पैदा करना लोगों का एक शौक हो गया है। पाल नहीं सकते, खिला नहीं सकते, बढ़िया पढ़ा नहीं सकते, चिकित्सा-उपचार भी नहीं करा सकते, मगर बच्चा होना ही चाहिए। संन्यासी ऐसा नहीं करेगा। अगर उसके पास साधन नहीं है तो शादी नहीं करता, क्या फर्क पड़ता है?

शादी तो मथुरा का पेड़ा है, जो खाएगा सो पछताएगा, जो नहीं खाएगा वह भी पछताएगा। शादी करो तो पछताओ, नहीं करो तो भी पछताओ। इसलिए शादी के पहले प्रश्नवाचक चिह्न लगा लो, मैं शादी करूँ या नहीं? संन्यास लेने वाले को जब कभी मन में कहीं शादी का विचार आता है, दूसरों को देख कर या अपने में कोई भावना उठती है तो उस समय मध्यम मार्ग रखना चाहिए। आसमान में सब तरह के बादल आते हैं, वासना के बादल, काम-क्रोध के बादल, आसक्ति के बादल, महत्त्वाकांक्षा के बादल, मगर आसमान में वे बादल स्थायी रहते हैं क्या? कभी ज्यादा देर तक रहते हैं, कभी नहीं। सावन-भादों में ज्यादा देर तक रहते हैं, वैशाख-ज्येष्ठ में नहीं।

मनुष्य का अन्तःकरण, मनुष्य का हृदय भी आकाश की तरह है। जो संन्यास लेना चाहते हैं, उनका हृदय बहुत साफ होता है, फिर भी उनको ये विचार बादल की तरह आते हैं। बादल आए और आदमी तुरन्त झुक जाए, ऐसा नहीं होता है। काम, क्रोध, लोभ या मोह आत्मा के स्वभाव नहीं हैं। ये अन्तःकरण के भी स्वभाव नहीं हैं। जैसे यह सामने वाला खम्भा गेरू रंग का है, मगर खम्भे का वास्तविक रंग गेरुआ नहीं है। आसमान का कोई रंग नहीं है, मगर वह नीला दिखता है। वैसे ही अन्तःकरण का जो स्वरूप है, कम-से-कम संन्यासी के अन्तःकरण का जो स्वरूप है, वह काम-क्रोध पर आधारित नहीं है। वे तो मात्र परछाइयाँ हैं जो आती-जाती रहती हैं। ■

Goal of a Sannyasi

Swami Satyananda Saraswati

What is the goal of a sannyasin?

We have only one goal, to serve the guru, to live for the guru, to work for the guru in a peaceful and correct way with an unfettered mind. We do not create psychotic and neurotic mental cobwebs around us. The pain and pleasure in life, were not there until we created them for ourselves. There are many mental conditions that a human being creates for himself. Sannyasins have become aware of this so they do not condition themselves.

All the swamis live in a community and work hard, sometimes eighteen to twenty hours a day. The ultimate goal which we know is the awareness of a greater reality beyond the body, beyond this world. The dimensions are infinite, but we do not worry. We know that with the way we are going we will reach it; we are not neurotic about it. The evolution of this self to the point of cosmic vision is our ultimate goal. For that it is important that we live in a community with the guru, do a lot of karma yoga and purify the mind. When the mind is purified, there is a spontaneous awakening, a great unfolding of our vast dormant potential.

In an ashram, karma yoga is given very much importance. We work so hard that karma yoga becomes our life. Only by making yoga part of one's life or one's whole life, can the maximum results be derived. ■

Nyasa

Swami Satyananda Saraswati

Can I combine sannyasa, my livelihood and artistic work?
Sannyasa is not a life which you cannot accept or which you can experience only by becoming a monk. No. I must tell you first what the philosophy of sannyasa is. Sannyasa does not mean renunciation. No. It is not even becoming a monk. It is derived from the basic expression called nyasa. *Nyasa* means trust, like a charitable trust, educational trust, or social trust.

Sannyasa means a trust. You have been using your mind, your body, your emotion, your intelligence, your intellect, your resources, everything you have, for yourself. The day you stop doing it – using your body for yourself, using your mind and emotion and everything for yourself – you are a sannyasin. That is the meaning of a sannyasin. A sannyasin must use his own resources for himself minimum. After all, for me to survive or for you to survive you need something.

That minimum requirement for survival is all right but using every individual capacity, individual potential, individual virtue, individual power, individual resource only for yourself, your wife, your children, your enjoyment, well, that is not sannyasa. If you have a lot of money you can spend it for yourself, have a building, have this or that. But if you create a trust of that money, and then resolve that this money will be used for an orphanage, medical care, or for education, then you can use that money only for that purpose.

A sannyasin makes a resolve. A person makes a resolve that he is going to utilize his life only for the purpose of enlightenment. A sannyasin has no other purpose in life – whether it is Swami Vivekananda or Buddha – a sannyasin's first resolve is to realize the higher consciousness, to realize his infiniteness. The purpose of taking sannyasa should be to realize through experience one's own infiniteness and to throw

away the idea, the experience, the notion of one's limitations. All one's resources, mental powers, emotional capacities will have to be harnessed towards the fulfilment of this goal.

Once you have achieved this particular object, as Buddha and many others did, there is a realization of what I should do. I should do what is good to humanity, I should help people – no, that cannot be the first idea of a sannyasin. Sannyasins should not lose track of this particular idea. Once you have had some sort of enlightenment, your mind, yourself, everything that you are, becomes different. In this enlightened state of your existence, revelations come, inspirations and a clean-cut path. First you become a sannyasin and after becoming a sannyasin you realize what is to be done. If nature has chosen you to become a Christ, to lead thousands of people, to heal hundreds, you will do it. Therefore, you become a tool, a medium, an instrument of the cosmic process. As many saints have said, 'I am an instrument in the hands of God'.

As long as a sannyasin has the ego that, 'I am the doer', 'I am doing', or 'I must do', he is functioning on the plane of duality. He is functioning on the plane of ego, *ahamkara*. He is functioning with a limited philosophy and concepts. Many sannyasins fail in life, because their primary education in sannyasa is incomplete, whether it is in Christianity or in any other religion. A sannyasin is one who has dedicated, surrendered and given up everything that he has; he is not going to use anything for his own self.

If he is a strong man let him go to Gangotri and practise penance. It is a strong man who can bear heat and cold and the rigours of life, let him utilize his strength in practising *tapasya*, austerity. Let him go to Gangotri and eat once a day, two chapattis with water from the Ganga.

Swami Sivananda lived like this. Swami Sivananda, my guru, lived in Rishikesh. He used to go to kshetra, a public charity. He used to collect rotis, every day five rotis, and he used to save one or two. In one week he used to save, say about fourteen, twenty or thirty rotis. He used to keep them and remain in his kutir for one month without coming out and every day he used to eat a little roti just to survive. ■

Sankalpa

Shall I fall on bended knees
And wait for someone to bless me
With happiness and a life of golden dreams?
No. I shall run into the desert of life with my arms open,
Sometimes falling, sometimes stumbling,
But always picking myself up, a thousand times if necessary,
Sometimes happy.
Often life will burn me,
Often life will caress me tenderly
And many of my days will be haunted
With complications and obstacles,
And there will be moments so beautiful
That my soul will weep in ecstasy.
I shall be a witness,
But never shall I run or turn from life, from me.
Never shall I forsake myself
Or the timeless lessons I have taught myself,
Nor shall I let the value
Of divine inspiration and being be lost.
My rainbow-coloured bubble
Will carry me further than beyond the horizon's settings,
Forever to serve, to love, and to live
As a sannyasin.

—Swami Satyananda Saraswati

Grihastha and Sannyasa

Swami Satyananda Saraswati

A sannyasin's life and householder's life are defined as akarma and karma. Grihastha ashrama is called akarma in karma. You realize that you are not acting, even though you are. A sannyasin's life is not acting while feeling you are acting.

In the second chapter of the *Bhagavad Gita* it is said, 'See karma in akarma, akarma in karma.' It can also be said, there are two paths: *pravritti*, involvement, and *nirvritti*, freedom

from involvement. Sri Krishna thinks that these two paths are not contradictory to each other: If you are engaged in your own karma, you can attain siddhi.

The life of a householder is by no means inferior to the life of a sannyasin, but unfortunately, householders throughout the world have now lost track of their aim. Many people do not even know how they should live the life, not only for self-realization, but even for normal happiness they do not know how to live.

Either you live for happiness, comfort, tranquillity and more and more of enjoyment or you live for self-realization. Householders today do not even know how to live a peaceful life. That means there is something lacking in them and that is why they are unhappy. Otherwise the life of a householder is a perfect pattern in itself through which you can attain nirvana, the highest summon bonum.

A householder's life is known as *grishastha ashrama*. There are four ashramas – brahmacharya ashrama, grihastha ashrama, vanaprastha ashrama and sannyasa. You can take one of the four and you will realize the ultimate. There are some people who cannot become householders and they should not. If I were a householder, I would have been in a jail. With such a mind which can think of so many things, how could I manage with one wife and two children with a little plot of land or a flat. I would have broken things. It is much better that I became a sannyasin and used the energy in a much better way. There are people who should not become householders; there are people who should not take sannyasa.

There are people who must remember that if they want to realize the ultimate nirvana, there are four paths – not only sannyasa ashram. Your house is also an ashram provided it is. It is not an ashram because you are not working there. Ashram is a place where you labour hard, *shram*. There is a labour you do in order to acquire external wealth. There is labour which you do in order to acquire inner wealth. There is also spiritual labour when you are meditating, or doing karma yoga, that is also *shram*, hard work. You are working with your children

and your family, that is also shram. You have to put forth hard work wherever you are for both worldly wealth and spiritual wealth.

Therefore, a householder's life is as good as the life of a sannyasin. I am the biggest householder. Sannyasa is a philosophy. It is not just clothes; it is an idea. I have so many children, but they are not born of my blood; they are born of my philosophy. Children born of philosophy are much better than children born of one's blood.

There are millions of Muslims, Christians and Hindus around the world. Are they the children of the same blood? Are all the Christians blood children of Christ? Are all Muslims blood children of Mohammed? No, they are born of philosophy. I have children; we have work, duties and a lot of responsibilities. Nothing can stand on the path of a man if he knows how to live it and how to accept. The harder we work, the better we feel because we are producing an external result for the community. We are producing a result for posterity, for history. At the same time, we are not diverting our energies to destructive purposes. We are neither destroying society nor ourselves.

If this idea of sannyasa is more or less translated into the life of a householder today, I think the householder life and the life of a sannyasin will come closer. Today the life of a householder and the life of a sannyasin have such a big gap, 'I am a householder, and he is a sannyasin. He is spiritual, can I be spiritual?' That gap has to be reduced.

It is true that life has to be based on kama, artha, dharma and moksha, the four purusharthas. For a householder, artha and kama come first, purpose and fulfilment of desires. For a sannyasin dharma and moksha come first, artha and kama come much later. That is the only difference. A sannyasin solely exists for dharma and moksha and a householder should not solely exist for artha and kama. Artha and kama are prominent, but a householder must know that the ultimate purpose of artha and kama is dharma and moksha. ■

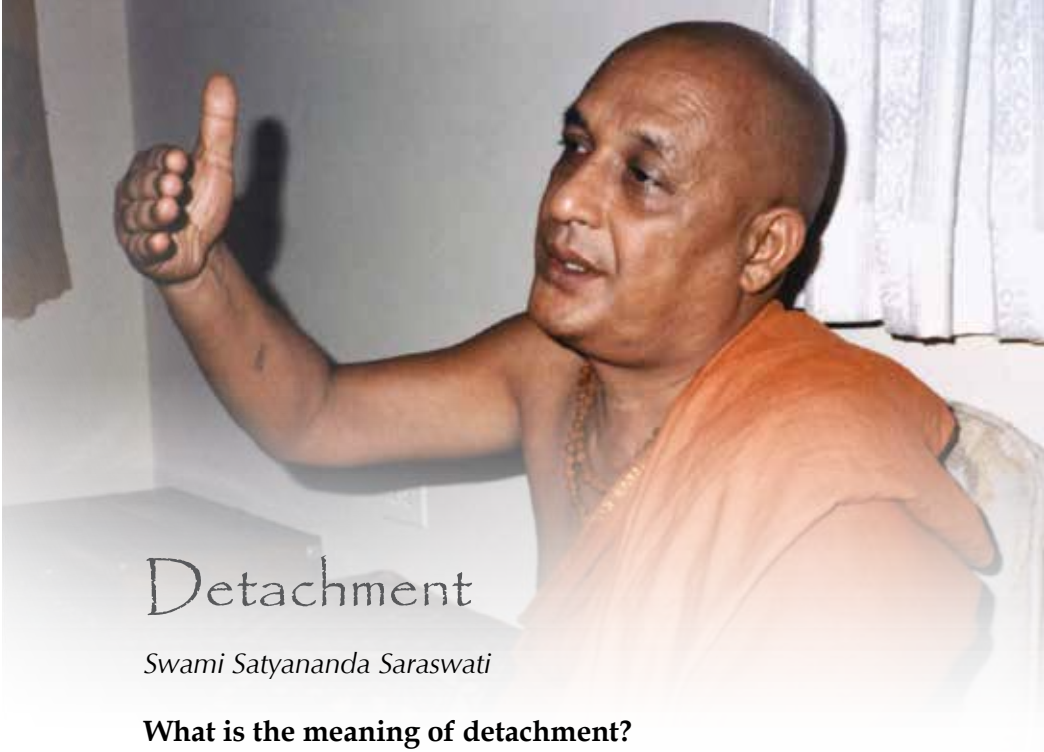

Detachment

Swami Satyananda Saraswati

What is the meaning of detachment?

It is in the nature of man to live a life of attachment. This instinct is so peculiar that it not only binds you by a large property, but it can also bind you through a small needle, and the sufferings are the same. Therefore, you will have to analyze the whole situation carefully. It is no use fighting with the items of attachment.

Detachment does not mean disassociation with objects, people and property. Detachment is a philosophy, an outlook, a way of dealing with the matters of your life. Even if you denounce your duties and obligations, even if you renounce your present situation of life, even if you renounce your country and everything, or you remain half-clad in the mountains living on a little food, still you may be attached to your ego.

This external attachment to the object is an expression of your attachment to your ego. The cause of suffering is man's involvement with his own ego. If you can detach yourself from your ego, it does not matter where you live, with whom you live, and whom you love. This detachment is called sannyasa. ■

A Philosophy

Swami Satyananda Saraswati

Qualification for sannyasa is dedication to a purpose which is also the literal meaning of sannyasa. Sannyasa means dedication to one purpose, which is enlightenment, realization,

or whatever you like to call it. That is the ultimate purpose of sannyasa. If a sannyasin is an individual, he can have his own way of life, you can call it personal life. However, if he is not an individual, but part of an institution, he has to go by social values. One may not believe in it, that is another matter, but since one lives in society one has to obey society, to some extent. If one does not want to obey society, one can fight. Then one is not a sannyasin, one is just emotional.

A sannyasin is a peace-loving man; he loves peace always – no problem, no quarrel but, sometimes, there are people who don't accept the values of society which is wrong. Such people are called revolutionaries, but sannyasins are not revolutionaries; I am not a revolutionary, I am an evolutionary. Things grow on their own. A sannyasin, if he is an individual, or part of an institution will have personal approaches to life which can be different. The sannyasin can do his sadhana, and if he likes to drink a little, let him drink. If he wants to realize, he can be a realized person, but if he is part of an institution his lifestyle will depend on where he is located – Europe, Middle East, India, or Japan. If he is in India, he has to respect the social values of the people and give respect to the guru. However, that is not an important part of sannyasa. It is only because a sannyasin lives in society and society looks after him and his work. Naturally, he cannot go on receiving support from society and at the same time abuse it, denigrate it, or not value it.

That is my understanding of sannyasa, not my interpretation. Mostly sannyasins in ancient days and even in present times have a certain way of life, food, rest, study and interactions. All these rules and regulations are not in the form of a cult, or a fanatical approach to life, but in order to provide life with a discipline. That is all. Christians wear black dress, Muslims wear brown, Buddhists wear the ochre robe. It is a discipline, but not essential, you can do without. Sannyasa is a mental attitude, a personal philosophy which anyone can have anywhere. ■

Independence

Swamiji, will you give shelter in your ashram if one wants to become a sannyasin?

One who wants to become a sannyasin should not seek security. He does not need a protector or benefactor, a lover or beloved or any attachment. That is the fundamental quality in him. Otherwise, if you go to an ashram, you will be wagging your tail like a dog.

There is no question of shelter because the ashram is a place where you can develop your consciousness. You can analyze yourself. Sannyasa is a very difficult ideal. It is not an institution; it is not a cult, sect or sampradaya.

Sannyasa is an idea for those people who respect independence, not only independence in the social context, but independence in every context. Independence of the sensual enjoyments, independence of security and insecurity, independence of love and hatred. There are people in this world, who have that temperament and that nature.

Those people should never make a mistake in committing themselves to the normal ways of life. They will not be successful there. Sooner or later, they should visit a few ashrams in India. There are many good ashrams in this country. They should find a guru or a teacher and stay there and take sannyasa.

संन्यास प्रशिक्षार्थियों से

हम संन्यास सत्र के प्रशिक्षार्थियों के लिये आपका क्या आदेश है?

आप लोग करने को तो बहुत कुछ कर सकते हैं, लेकिन अपना रास्ता आपको स्वयं खोजना चाहिये। चाहे योग सिखाओ, चाहे परमार्थ करो, रास्ता आपको निकालना है। एक बच्चा पैदा कर दिया और जिन्दगीभर उसी की चिन्ता, धत्त तेरी की! यह भी कोई जिन्दगी है! जीवनभर वही बच्चा दिमाग में कंकड़ की तरह घुसा हुआ है। अरे, दूसरों के बारे में भी सोचो। आप लोगों ने जिन्दगी देख ली है, खूब खा-पी चुके हो, कमा चुके हो, दुःख-सुख सब भोग चुके हो। अब आप खुद सोचो कि आपको क्या करना है। दूसरों के आँसू पोंछने की कोशिश करो, दूसरों का घर बसाने की कोशिश करो। किसी लड़के या लड़की को पढ़ाने की कोशिश करो। समझो कि तुम्हारे दो-तीन-चार बच्चे और हैं। जैसे तुम अपने बच्चे से सबेरे-सबेरे पूछते हो कि कैसे हो, बीमार तो नहीं हो, वैसे ही दूसरे से पूछो, क्या हो गया, तबीयत ठीक है? परायों को भी अपना बनाने की कोशिश करो।

जो दूसरों के बारे में सोचता है, उसके दुर्गुणों को दुनिया नहीं देखती। कुछ महीने पहले इंग्लैण्ड की राजकुमारी डायना की मृत्यु हुई तो लोगों ने उसे कितना सम्मान दिया! क्यों? उसने अपने सारे कपड़े, अपने सारे जूते, अपनी सारी सम्पत्ति समाज-सेवी संस्थाओं को दे दी थी। अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका और एशिया के कई देशों में वह खुद जाती थी और वहाँ उन संस्थाओं के काम को आगे बढ़ाती थी। लंदन में ही सौ से अधिक संस्थाओं को सहयोग दिया। आखिर वह तो राजकुमारी थी, उसके पास पैसे की कमी नहीं थी। पर उसने सोचा कि पैसे को भोग में क्यों लगाना, समाज-सेवा में लगा दो। आखिर जनता का ही तो पैसा है। उसने सब दे दिया।

जो व्यक्ति दूसरे के काम आता है, दुनिया उसके अवगुण नहीं देखती। *परो अपावन ठहर पै कंचन तजै न कोई* – तुम्हारी सोने की अंगूठी अगर टॉयलेट में गिर जायेगी तो क्या करोगे? पानी से बहा दोगे क्या? नहीं, निकाल लोगे। जिस वस्तु में गुण होता है, जो वस्तु लाभदायक होती है, जो व्यक्ति फायदा पहुँचाता है, उसे संसार सर माथे रखता है। डायना को कितना सम्मान मिला, पता नहीं तुम लोगों को अंदाज़ है या नहीं। उस पर करोड़ों पाऊँड की लागत

के फूल चढ़ाये गये। उस पर 'कैण्डल इन द विण्ड' नामक जो गीत गाया गया, उसकी आज तक सबसे ज्यादा बिक्री हुई है। एल्टन जॉन नामक मशहूर गायक ने उसकी समाधि के वक्त यह गीत गाया था और पन्द्रह-सोलह दिन में सब कैसेट-सीडी बिक गये। उसका सारा पैसा दान में गया है।

एक और उदाहरण राजा भरत का ले लो। इतिहास कहता है कि इस देश में प्रजातंत्र की नींव राजा भरत ने ही डाली थी। उन्होंने अपने पुत्रों को राज्य नहीं दिया, बल्कि समिति को राज्य दिया। देखा जाए तो भरत कौन था? वह शादी के पहले पैदा हो गया था, औरस पुत्र नहीं था। वैदिक धर्म के अनुसार वह नाजायज बच्चा था। उसकी माँ कौन थी? शकुन्तला, मेनका और ऋषि विश्वामित्र की बेटी। उनकी भी ढंग से शादी हुई होती तो हम मानने के लिये तैयार होते कि पाणिग्रहण हुआ, कन्यादान हुआ, किसी ब्राह्मण ने ठप्पा लगा दिया पति-पत्नी का। पर ऐसा तो हुआ नहीं। मेनका ने उन्हें फँसा दिया और शकुन्तला पैदा हो गई। मेनका उसे छोड़कर चली गई और कण्व ऋषि ने उसे पाला। यह भूमिका है भरत की। ऐसी भूमिका होने पर भी भरत को इस देश के कोटि-कोटि लोगों ने इतना सम्मान दिया। सम्मान ही नहीं, इस देश का नाम ही भारत रख दिया। क्यों? इसलिए कि भरत गुड्डा-गुड्डी या कुत्ते-बिल्ली से नहीं खेलता था, वह शेर के साथ खेला करता था। जो बच्चा शेर के साथ खेले, नाग-साँप से खेले वह विशेष जरूर है। भरत एक असामान्य बालक था।

ऐसे उदाहरण इतिहास में बहुत-से आते हैं। जो व्यक्ति दूसरों के काम आता है, लोग उसे भगवान की तरह मानते हैं। यह बात गाँठ बाँध लो तुम लोग। अपना जीवन जो दूसरों के लिये समर्पित कर दे, उसे हम दधीचि की तरह, राजा शिबि की तरह, राजा रन्तिदेव की तरह मानते हैं। राजा रन्तिदेव कहते थे –

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्॥

'हे भगवान! मुझे राज्य की इच्छा नहीं है। मुझे स्वर्ग की कामना भी नहीं है। यहाँ तक कि मुझे पुनर्जन्म से मुक्ति अर्थात् मोक्ष की भी इच्छा नहीं है। अगर मैं कुछ चाहता हूँ तो सिर्फ यही कि मैं दुःखी प्राणियों के दुःख को दूर करने में सफल बनूँ।' यह राजा रन्तिदेव की प्रार्थना थी।

यह दुनिया एक चीज को मानती है – अन्नदाता। इस बात को तुम भूलना नहीं। अन्नदाता को सर्प भी पहचानता है, पशु भी पहचानता है, इन्सान तो

पहचानेगा ही। हमारा यही भाव रहा है कि किस तरह से हम दूसरों की मदद कर सकते हैं। अगर हमें दूसरे की मदद करनी है, तो हमें वह क्षमता भी अर्जित करनी होगी। दूसरे की मदद करना बहुत अच्छी भावना है, बहुत अच्छी अभिलाषा है, पर केवल अभिलाषा होना काफी नहीं है। अपनी योग्यता का भी निष्पादन करना सीखो। यह मत सोचना कि पैसे से ही सब काम हो जाता है। नहीं, पैसा एक आवश्यक साधन है, मगर पैसा ही सब कुछ नहीं है।

हमारा सब से ज्यादा जोर है स्त्री-शिक्षा पर। हम समझते हैं कि औरतों को लायक बनाये बिना समाज का उद्धार हो नहीं सकता, चाहे वह अमीरों का समाज हो या गरीबों का। औरतों को घर से बाहर निकलना पड़ेगा। इसके बिना देश का विकास सम्भव नहीं। दुनिया बहुत तेजी से आगे बढ़ रही है। प्रतिस्पर्द्धा बढ़ रही है इस युग में। अब स्त्रियों को शिक्षित किये बिना, स्वावलम्बी बनाए बिना काम नहीं चलेगा, क्योंकि इक्कीसवीं शताब्दी का समाज परिवार-केन्द्रित समाज नहीं, उपलब्धि-केन्द्रित समाज है। परिवार के बजाय उपलब्धियों का महत्त्व होगा।

कहने का मतलब यह कि वैज्ञानिकों, संगीतज्ञों, नर्तकों या संन्यासियों की जो परम्परा होती है, वह वंश-परम्परा पर नहीं बल्कि विद्या-परम्परा पर चलती है। वंश-परम्परा खोखली है, केवल अपने को संतोष देने के लिए है। असली चीज तो विद्या-परम्परा या गुरु-परम्परा है। संगीत, नृत्य, ज्योतिष, गणित, विज्ञान, अध्यात्म – सबमें गुरु-परम्परा है। संन्यासियों, वैरागियों, उदासीनों और सिक्खों में गुरु-परम्परा है। हर विद्या में गुरु-परम्परा है। यह इक्कीसवीं सदी का चिन्तन है। अब भविष्य अपना तुम स्वयं चुनो।

– संन्यास सत्र, मुंगेर के सदस्यों हेतु सत्संग, 6 नवम्बर 1997

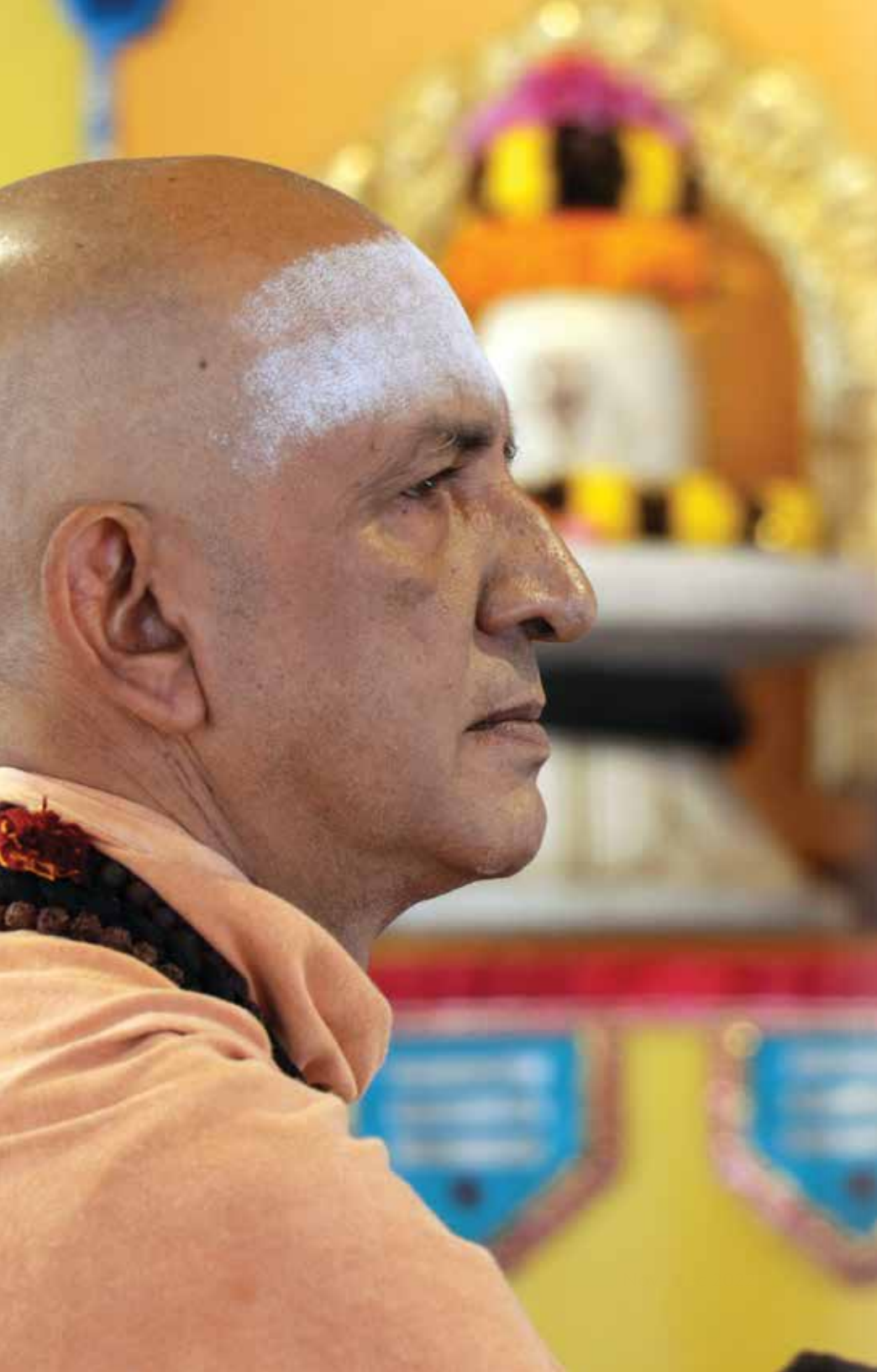

There is little time to waste
There is little room to wiggle
In fact, the time left is so little,
So very little
A year turns into a lifetime, doesn't it?
Not sure anyone's figured that out
Still doing what they've always done.
So little time is left, true.

Servants of the Rays
Live only to serve,
That is our only purpose,
There is nothing else.

Since we have time to share this wisdom,
We find the souls who listen.

The heat is on
Turned up all the way in fact
The house is on fire, and no one is running.
What will we do when this faucet is turned off?

No, we don't sleep
We keep on keepin' on
Regardless if anyone is listening or not.

Om Namah Shivaya
Om Namah Shivaya
Om Namah Shivaya

The faucet remains open
When Om Namah Shivaya is playing
Om Namah Shivaya saves lives
Om Namah Shivaya is playing now

Sri Niranjan made sure of it.

Hari Om Tat Sat

Jai Gurudev

—*Yogasena*

Sankranti at Sannyasa Peeth

Swami Ratnashakti Saraswati

According to the scriptures, there are four *yugas* or eras of time. Each yuga has different characteristics according to the level of dharma exemplified in each age.

Daan in different yugas

The first is the Satya Yuga. In Satya Yuga, dharma is traditionally depicted in the form of a cow symbolizing goodness and natural order, standing on all four legs. Satya Yuga is characterized by purity of intention and appropriate conduct. Purity of intention represents a connection to the positive, selfless and expansive human qualities and attitude. Appropriate conduct is based on an understanding and acceptance of duty rather than the assertion and dominance of individual rights. During the Satya Yuga, there was a very high level of material, social and spiritual existence. In order to give daan, one had to search for a recipient, and take their permission before any item could be given.

In Treta Yuga, the yuga that follows, dharma begins to decline and stands on three legs. The purity of mind and intention slightly diminishes, but there is still a high level and quality of existence. In Treta Yuga, daan was not a general practice. A recipient had to be invited for daan and only if they accepted the invitation could daan be performed.

In Dwapara Yuga dharma is reduced to standing on two legs. The purity of Satya Yuga and the righteousness of Treta Yuga are gone. Due to selfishness, the inherent understanding of the importance of duty and righteousness is lost. People are less able to discriminate and determine the appropriate action and conduct. What I want becomes the dominant motivating

factor in life and mental purity is gone. As a result of lies, deceit and lust for power, there are wars and famines. People are plagued by ailments, diseases and suffering. Yajnas are conducted and daan is given to correct the imbalances of life. It is only in Dwapara Yuga that the concept of soliciting and seeking daan comes in. People ask for daan to help them manage the stresses and difficulties of life. Daan and yajna become the means to restore dharma and harmony.

We are now in Kali Yuga, when dharma stands on one leg only. Detailed accounts and descriptions of Kali Yuga have been given in the Puranas, *Mahabharata* and *Ramayana,* which predict the decline of humanity, society and the environment. In Kali Yuga rulers and political leaders are corrupt and become a danger to the world and a threat to their citizens. Wealth alone is important and materialism reigns supreme. The mind and senses are completely externalized and the connection with the inner spiritual self is lost.

People are obsessed with material desires and the predominant mental state is agitated, full of anger, greed, fear and anxiety. Due to greed and selfishness the natural harmony and balance of the environment is lost. Biodiversity disappears from the earth and rivers dry up. Climatic extremes of heat, drought, cold, wind, rain and snow are predicted. Society collapses and there is widespread poverty and famine. People will start migrating, because they are no longer able to remain in their homes.

These predictions of Kali Yuga made thousands of years ago have become the news of today. In Kali Yuga the importance of daan is paramount, as a means of self-purification and the way to contribute towards the health, welfare and security of others. Those who have enough must share with others, and this has been the instruction of the spiritual luminaries of the modern age.

The revival of the ancient and classical tradition of daan through the activities of Sannyasa Peeth, Munger, under the inspiration of Swami Niranjanananda could not be more

timely. Every month the Sankranti daan is given at Sannyasa Peeth according to the instructions and system of daan outlined in the scriptures and taught by the rishis and sages throughout the ages.

Tula Sankranti

Tula Sankranti occurs when the sun transits into the zodiac sign of Libra. Around this time, the seasons change and the weather becomes cooler. The traditional items of daan as prescribed are those that will be a source of warmth, comfort and prosperity. Tula Sankranti was celebrated on the 18th of October 2022, and the female cooks who work in the Munger Primary and Middle Schools were called to receive the daan. Items given were vastra daan in the form of sari, t-shirt, dhoti, kurta and pyjama as well as shoes. Sanitary items were also given. Items of grih daan for the home included large cotton dari for the floor as well as bed linen and towels. All the items were packed in a blue backpack that can easily and comfortably be carried by the ladies when they walk to their place of work.

Vrischika Sankranti

Vrischika Sankranti takes place in the month of November, when the sun enters the zodiac sign of Scorpio. This is one of the four Vishnupadi Sankrantis that are considered especially auspicious. Daan that is correctly performed on this Sankranti is said to earn 100,000 times the normal merit of daan. The donor will be blessed with a happy state of mind and a peaceful and harmonious environment. Especially auspicious items of daan on this Sankranti are those that will provide warmth in the cold winter months to follow. At Sannyasa Peeth this year Vrischika Sankranti was celebrated on the 17th of November and the elderly and destitute members of the local community received daan. Swami Niranjanananda personally greeted each and every one of the recipients and enquired about their health and welfare. To these men and women all over seventy years of age, with no pension or other support daan was given in the form of a woollen blanket, thermals, warm sweater and cardigan, woollen cap and socks, as well as bed linen and a large cotton dari. ■

संन्यासाभिलाषी से

मैं संन्यास के लिए पूछने आया हूँ?

संन्यास दो ही दिन लिया जाता है, शिवरात्रि और गुरु पूर्णिमा को, अगर ठीक ढंग से लेना चाहो तो। अगर केवल गेरू कपड़ा पहनना है, सर मुड़ाना है तो आज भी हो सकता है, इसमें क्या रखा है। शिवरात्रि के दिन और गुरु पुर्णिमा के दिन शिव और गुरु का सान्निध्य रहता है। संन्यास परम्परा के अनुसार तो मुख्यतः शिवरात्रि ही संन्यास दिवस है। गुरु पूर्णिमा, गुरु पूजा और अन्य दीक्षाओं का दिन है, उत्सव का दिन है, जबकि शिवरात्रि पर्व है। गुरु पूर्णिमा को तो हलवा-पूरी खाना पड़ता है, शिवरात्रि के दिन संन्यास लेने वालों को उपवास करना पड़ता है।

इसी प्रकार हर सम्प्रदाय में अलग-अलग दिन होते हैं, तंत्र साधना में दीक्षा का दिन अलग होता है, वैष्णव सम्प्रदाय में अलग होता है। संन्यास शैव सम्प्रदाय की दीक्षा है, वैरागी वैष्णव सम्प्रदाय की दीक्षा है। शैव, वैष्णव और शाक्त, ये भारत के तीन मुख्य सम्प्रदाय हैं। बाकी दो सम्प्रदाय, सौर और गाणपत्य तो खत्म ही हो गये हैं। शैव सम्प्रदाय में संन्यास का दिन मुख्यतः शिवरात्रि को माना जाता है, गुरु पूर्णिमा को एक तरह से सेकेण्डरी दिन मानते हैं।

क्या मैं संन्यास लेने की स्थिति में हूँ?

यह निर्णय केवल चेला को लेना पड़ता है। अगर खाना तुमको खाना है तो निर्णय तुम करोगे या रसोईया? देखो, संन्यास में यह सब नहीं सोचा जाता है। संन्यास एक आत्मघाती मनोवृत्ति है। संन्यास लूँ या नहीं, फायदा होगा या नुकसान, उससे ज्ञान मिलेगा या नहीं, मेरी उम्र संन्यास की है या नहीं, कहीं रास्ते में गिर तो नहीं जाऊँगा, पतित तो नहीं हो जाऊँगा, लोग क्या कहेंगे, बीमार हो गया तो पैसे का क्या होगा? संन्यास लेने से पहले यह सब नहीं सोचा जाता। जिस वक्त आदमी आत्महत्या का चिन्तन करता है वह इतनी बातें थोड़े ही सोचता है। जो एक बार सोच लिया वह अन्तिम घड़ी तक रहना चाहिए। संन्यास मार्ग में या तो आगे बढ़ते चलो या इसमें मत ही आओ। हमारे यहाँ संन्यास का मुख्य उद्देश्य लोगों का उपकार करना, लोगों की भलाई और मदद करना है। ■

Yoga Publications Trust

Guru Bhakti Yoga 2011–2015

गुरु भक्ति योग 2011–2015

Swami Niranjanananda Saraswati

In January 2011, Swami Niranjanananda Saraswati established the tradition of Guru Bhakti Yoga sadhana, conducted on 5th and 6th of every month at Ganga Darshan Vishwa Yogapeeth, Munger.

These two days honour the life of Sri Swami Satyananda Saraswati, a sannyasi of the highest calibre. He remains the inspiration to all who have known him and he will continue to inspire future generations.

The first book in the series *Guru Bhakti Yoga* is a compilation of satsangs given by Swami Niranjanananda from 2011 to 2015 on the occasion of this sadhana.

For an order form and comprehensive publications price list, please contact:
Yoga Publications Trust, PO Ganga Darshan, Fort, Munger, Bihar 811 201, India.
Tel: +91-09162 783904, 06344-222430, 06344-228603

A self-addressed, stamped envelope must be sent along with enquiries to ensure a response to your request.

हरि ॐ

सत्य का
आवाहन एक द्वैभाषिक, द्वैमासिक पत्रिका है जिसका सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जा रहा है। इसमें श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती, श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती एवं स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती की शिक्षाओं के अतिरिक्त संन्यास पीठ के कार्यक्रमों की जानकारियाँ भी प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती
सह-सम्पादक – स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती

संन्यास पीठ, द्वारा–गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, हरियाणा में मुद्रित।

© Sannyasa Peeth 2022

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.sannyasapeeth.net
www.biharyoga.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प :
(Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कवर एवं अन्दर के रंगीन फोटो :

श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHBIL/2012/44688

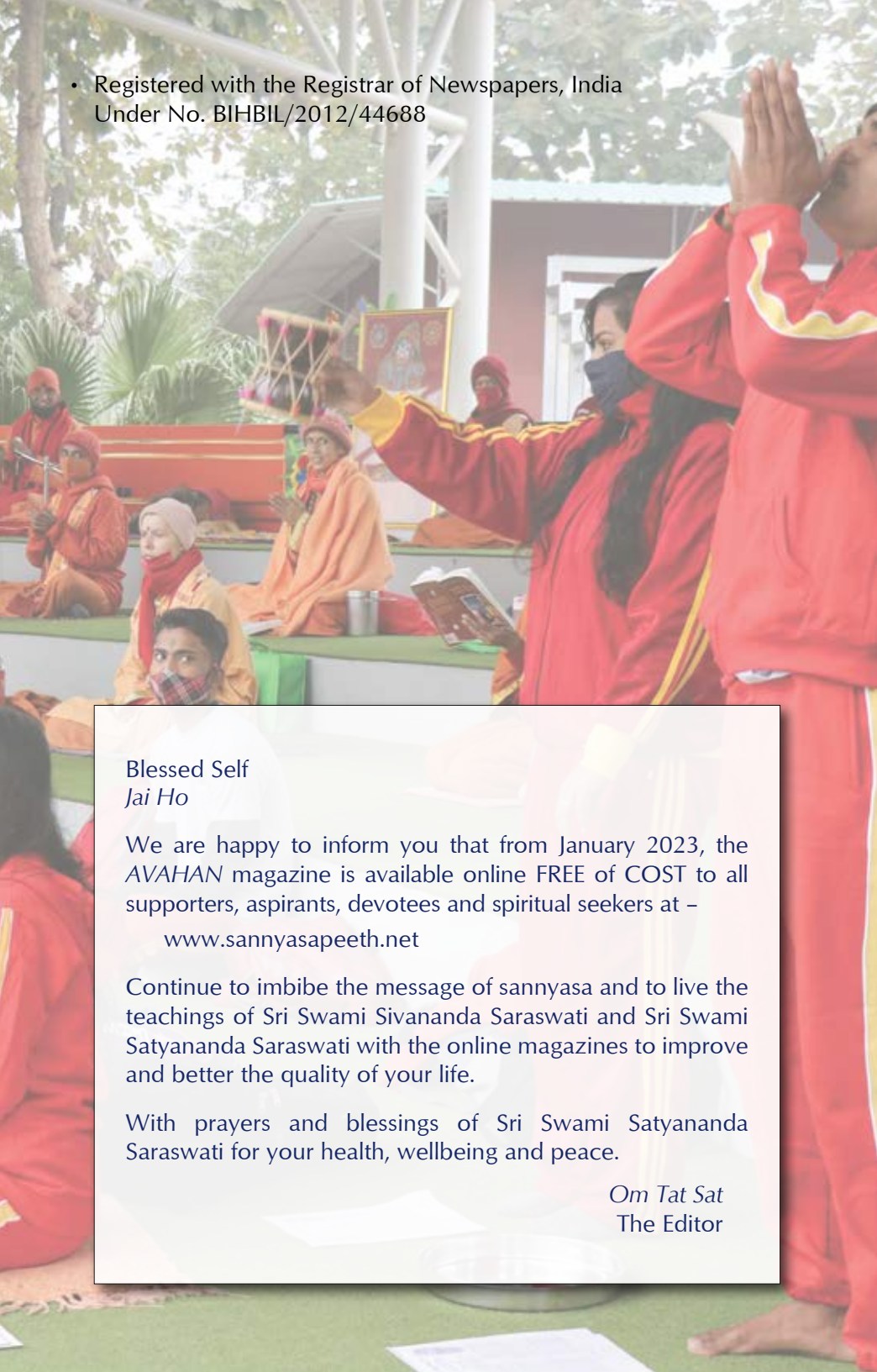

Blessed Self
Jai Ho

We are happy to inform you that from January 2023, the *AVAHAN* magazine is available online FREE of COST to all supporters, aspirants, devotees and spiritual seekers at –

www.sannyasapeeth.net

Continue to imbibe the message of sannyasa and to live the teachings of Sri Swami Sivananda Saraswati and Sri Swami Satyananda Saraswati with the online magazines to improve and better the quality of your life.

With prayers and blessings of Sri Swami Satyananda Saraswati for your health, wellbeing and peace.

Om Tat Sat
The Editor